राजस्थान-केशरी

अथवा

महाराणा प्रतापसिंह।

(ऐतिहासिक नाटक)

श्री राधाकृष्णदास विरचित।

" जो दृढ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार "

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़
बनारस सिटी में मुद्रित।

सम्वत् १९७५ विक्रम

पांचवां संस्करण]   १९१९   [मूल्य ॥)
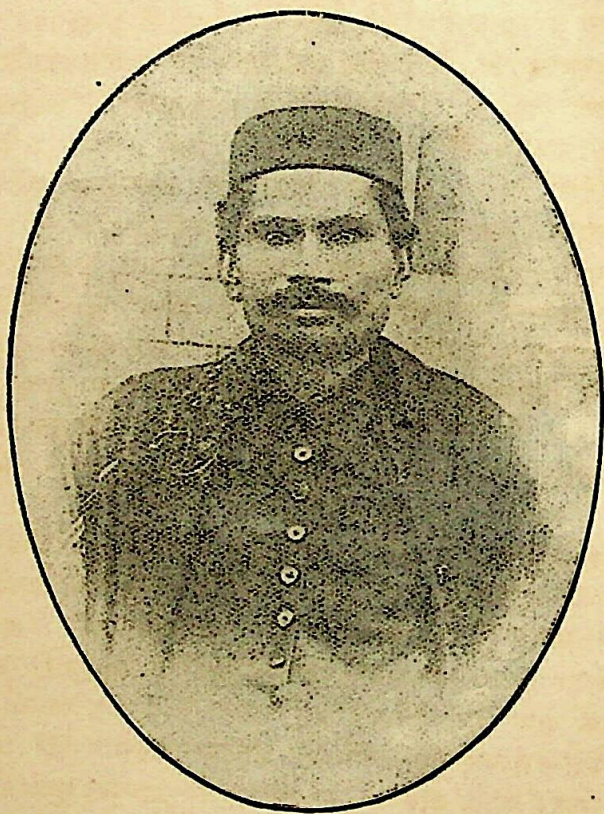
ग्रंथकर्त्ता बाबू राधाकृष्णदास ।

श्रीहरिः

निवेदन ।

पूज्यपाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक में (प्रतापसिंह के) अकबर की पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देखकर मैंने इस नाटक को लिखना आरम्भ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों की भेंट करता हूँ।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीतिविशारद अकबर का चरित्र जैसा अङ्कित करना चाहिए वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नहीं है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश में कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरञ्जन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस नाटक को पहिले मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र में छापना आरम्भ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी. परन्तु हिन्दीरसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बन्द हो गया और ग्रन्थ अधूरा ही रह गया। परन्तु फिर पण्डित जगन्नाथ मेहता और बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ, अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मित्रवर कुंवर योधसिंह मेहता उदयपुर निवासी ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह में

सहायता दी और उत्साहित किया इसलिये मैं उन्हें भी धन्य-वाद दिए बिना नहीं रह सकता।

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे टाड साहिब के "राजस्थान," पूज्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के "उदयपुरोदय," कुंवर योधसिंह मेहता के "मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास," मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ जोधपुर के "महाराजा प्रतापसिंह के जीवन-चरित्र" तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती "प्रताप नाटक" से बहुत कुछ सहायता मिली है इसलिये मैं हृदय से इन ग्रन्थकारों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसी को उपन्यास और किसी को इतिहास स्वरूप में यथावकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ, परन्तु यह इच्छा पूरी करना उन्हीं सहृदय पाठकों के हाथ है। यदि आप लोगों से यथोचित उत्साह मिलेगा और मुझे यह निश्चय होगा कि मेरा लेख आपको रुचिकर हुआ, तो मैं शीघ्र ही फिर आपकी सेवा में, परम प्रसिद्ध भगवद्भक्तिपरायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवन-चरित्र (जिसे मैंने बहुत परिश्रम और खोज से संग्रह किया है) लेकर फिर उपस्थित होऊंगा।

अन्त में मेरी प्रार्थना है कि विज्ञ महाशयों की दृष्टि में जो त्रुटि इस नाटक में दिखाई दे कृपाकर उससे वे मुझे मित्रभाव से अवश्य सूचित करें जिसमें यदि उचित हो तो दूसरे संस्क-रण में धन्यवादपूर्वक वे त्रुटियां दूर कर दी जांय।

काशी चौखम्भा
श्रीगिरिधर जन्मोत्सव
संवत् १९५४ मि॰ पौषकृष्ण
ता॰ १२ दिसम्बर सन् १८९७ ई॰

हिन्दी रसिकों का सेवक
श्रीराधाकृष्ण दास।

श्रीहरिः

भूमिका ।

महाराणा उदयसिंह संवत् १५९७ (१५३९–४० ई०) में चित्तौर (मेवाड़) की राजगद्दी पर बैठे, अकबर ने बड़ी धूम-धाम से धावा किया परन्तु वह हार खा कर लौट आया। कुछ दिनों पीछे मेवाड़ में आपस की फूट देखकर अकबर को अवसर मिला और चित्तौर पर फिर उसने धावा किया। उदयसिंह अपनी जान लेकर भागे परन्तु राजपूत सरदारों ने अपना प्राण रहते चित्तौर शत्रुओं को न दिया। घोर युद्ध हुआ, जयमल और पुत्ता ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। अन्त में मेवाड़ की राजलक्ष्मी भाग्यवान अकबर के हाथ आई। इस लड़ाई में तीस हजार राजपूत वीर काम आए और बहुत सी स्त्रियां भी लड़कर मर गईं। शेष जो रह गई थीं उन्होंने "जहरव्रत" किया अर्थात् जलकर अपनी पवित्रता को बचाया। अकबर ने चित्तौर दख़ल किया। इसका पूरा वृत्तान्त फिर कभी निवेदन करेंगे।

उदयसिंह भाग कर पिपली राज्य के जङ्गलों में गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे। वहां से वे अरावली की घाटी में आए, जहां बाप्पा रावल भी रहे थे। उन्होंने पहले उस स्थान पर अपने राजत्वकाल में एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है। अब एक छोटा सा महल

बनवाया और फिर तो उसके आसपास और भी इमारतें बन गईं और वह एक छोटा सा नगर हो गया। उसका नाम उदयपुर रक्खा जो कि अब तक मेवाड़ राजवंश की राजधानी है।

चित्तौर जाने के चार वर्ष पीछे ४२ वर्ष की अवस्था में उदयसिंह ने संसार छोड़ा। उन्हें पचीस बेटे थे। मरते समय उदयसिंह ने छोटे बेटे को कुल की प्रथा के प्रतिकूल अपना उत्तराधिकारी बनाया। जगमल गद्दी पर बैठ गया परन्तु यह बात मेवाड़ के सरदारों को बहुत ही बुरी लगी और उन लोगों ने शीघ्र ही उसे उतार कर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया।

प्रतापसिंह का जन्म जेठ सुदी १३ संवत् १५९६ को हुआ था और मिती फागुन सुदी १५ संबत् १६१८ को गांव गोघूंदे में वे गद्दी पर बैठे थे।

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परन्तु न तो उनके पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ क़िला रहा। प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था, भीतर भीतर चित्तौर मुसल्मानों से छीन कर अपने कुल का गौरव पुनः स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। यद्यपि सरदार लोग लड़ाई में हारते हारते टूट गए थे और उनका जी छोटा हो गया था परन्तु इनकी दृढ़ता, वीरता और उच्चाभिलाष देखकर सिर सभों को साहस हुआ. फिर सब कमर कस कर खड़े हुए, प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवा न की कि अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लिए कोई सामान ठीक नहीं है। परन्तु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने के उमङ्ग से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोच कर कि जैसे हमारे

पूर्वजों ने इस चित्तौर की रक्षा की है और अपने शत्रुओं को इसी दुर्ग में कैद किया है क्या हम वैसा न कर सकेंगे, अकबर की सेना और सामान को तुच्छ जाना।

जिस समय प्रतापसिंह अकबर से लड़ने के लिये सन्नद्ध हो रहे थे, उस समय अकबर ऐसे उपायों में लग रहा था, जिनको सुनकर प्रतापसिंह अत्यन्त ही दुखित हुए। वह उनके जाति भाइयों तथा सम्बन्धीगण को अपनी ओर मिला रहा था।

मारवाड़, बीकानेर, आमेर, (जो कि पहिले प्रताप के साथ थे अकबर के पक्षपाती हुए, यहां तक कि प्रतापसिंह का सगा छोटा भाई (सक्ता जी) सगर जी भी उनको छोड़ कर बादशाह से जा मिला और इसके बदले में उसे उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का क़िला दिया गया और वह राणा की पदवी से भूषित किया गया।

ज्यों ज्यों उनके विरुद्ध सामान बढ़ते जाते थे त्यों त्यों प्रताप का उत्साह और साहस भी बढ़ता जाता था। उन्होंने अपनी जननी के दूध की सौगन्ध खाई कि जैसे होगा अपनी मातृभूमि का उद्धार करेंहींगे। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बड़े पराक्रम से लड़ते रहे और अन्त में एक प्रकार सफलमनोरथ भी हुए।

महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते आए, प्रतापसिंह ने उनका बड़ा आतिथ्य सत्कार किया परन्तु वे उनके साथ खाने में शरीक न हुए, यही जड़ लड़ाई आरम्भ होने की हुई।

मानसिंह के दिल्ली आने पर, बादशाह ने राणा पर क्रुद्ध होकर मानसिंह के साथ मिती चैत्र सुदी ५ संवत् १६३२ को

पांच सहस्र सेना भेजी। इस सेना के साथ आसिफ़खां मीर-बख्शी, ग़ाज़ीख़ां, सैयद अहमद, सैयद हाशिम, राय लूनकरण आदि सरदार भी थे। टाड साहब ने लिखा है कि इस लड़ाई में शाहज़ादा सलीम भी आए थे परन्तु यह भ्रम है, शाहज़ादा सलीम उस समय केवल ७ वर्ष के थे।

यर लड़ाई हल्दी घाटी की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। ग्वालियर के राजा रामसिंह का एकलौता बेटा इस लड़ाई में मारा गया, परन्तु इससे उक्त राजा दुखी न होकर और भी उत्साह के साथ लड़े तथा काम आए, और ग्वालियर के राजसिंहासन को अनाथ छोड़ गए।

राणा ने अपने घोड़े चेतक को मानसिंह के हाथी पर कुदा कर बरछी मारी, परन्तु वह वार ख़ाली गया, हौदे को तोड़ कर बरछी महावत को लगी और महावत मारा गया। फिर तो बादशाही फ़ौज इन पर टूट पड़ी और समीप था कि राणा मारे जाते परन्तु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झण्डे को लेकर एक ओर भागे। मुसल्मानों ने समझा कि राणा उधर ही भागे जाते हैं, सब उसी ओर झुक पड़े और इधर अवसर पा राणा निकल गए। झाला मानसिंह अपने सब साथियों के साथ वहीं खेत रहे और ऐसी वीरता के साथ अपने स्वामी का प्राण बचाया। राणा ने इसके पलटे में उक्त झालाराना के वंशधरों को अपने दाहिने ओर स्थान दिया और आज्ञा दी कि ये लोग महल तक नक्कारा बजाते अपने छत्र और झण्डे के साथ आया करें।

राणा को भागते हुए पहचान कर दो मुग़लों ने उनका पीछा किया। परन्तु एक बरसाती नदी बीच में आ गई और राणा का घोड़ा चेतक बहुत घायल होने पर भी अपने स्वामी

को लेकर नदी फाँद दया। इधर इस असहायावस्था में राणा को देख कर उनके भाई सक्ता जी का भी भ्रातृस्नेह उमड़ आया और वे प्राचीन वैर भुलाकर उनके पीछे दौड़े, और जिस समय दोनों मुग़ल नदी उतरने के उद्योग में थे उनको ललकारा और दोनों को लड़कर मार गिराया। इस भांति राणा दूसरी जानजोखों से बचे।

चेतक, ज्यों ही राणा उससे उतरे, गिरकर मर गया। राणा ने उसके मरने पर बड़ा शोक किया और उस स्थान पर एक चबूतरा बनवाया। प्रायः स्वयं वहां जाया करते थे।

टाड साहब के लेखानुसार यह लड़ाई मिती सावन वदी ७ संवत् १६३३ को हुई थी और इसमें ५०० मनुष्य राणा के तथा ३५० तोमर (तुंवर) राजा रामसिंह ग्वालियरवाले के काम आए।

"अकबरनामे" में लिखा है कि बादशाही फौज उखड़ चुकी थी और निकट था कि भाग खड़ी होती, परन्तु महतर-खां ने चालाकी की, वह चन्दौल की फौज को दौड़ाए हुए आया और यह बात प्रसिद्ध की कि बादशाह आ पहुंचे, बस फिर सभों को साहस हो गया और राणा की सेना हताश होकर लौट पड़ी।

मुंशी देवीप्रसाद मुँसिफ जोधपुर ने महाराणा प्रतापसिंह का जीवनचरित्र बहुत खोज के साथ लिखा है। हम आगे का वृत्तान्त अविकल उन्हीं के ग्रंथ से धन्यवादपूर्वक उद्धृत करते हैं।

"इस लड़ाई के पीछे महाराणा ने कुँभलमेर के किले में अपनी गद्दी जमाई जो उदयपुर से पश्चिम की तरफ पहाड़ों में परगने गोढ़वाड़ के ऊपर है और मैदान का तमाम मुल्क

जिसको बहुत करके मेवाड़ कहते हैं उजाड़ दिया और वहां के आदमियों को पहाड़ों में बुलाकर अजमेर मालवे और गुजरात के रास्तों पर लूट मार शुरू कर दी जिससे नाज और दूसरी व्योपार की चीजों का आना जाना बन्द हो गया और बादशाही लश्कर पर बड़ी तकलीफ़ गुजरने लगी। आसिफ़खां और मानसिंह से कुछ बन्दोबस्त न हो सका और इसकी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँची। मगर बादशाह का दिल उस वक्त बंगाले की तरफ लगा हुआ था क्योंकि वहां उनकी फौज पठानों से लड़ रही थी और वे खुद उसकी मदद के वास्ते सावन वदी २ को बंगाले की तरफ रवाना हुए। खुशनसीबी से उसी मिती को जो पच्चीसवां दिन गोघूंदे की फतह से था बंगाला फतह हो गया और बादशाह यह खबर सुन कर रास्ते से राजधानी में लौट आए। वहां से जाहिर में तो जियारत और असल में मेवाड़ के लश्कर को मदद पहुंचाने के लिये रवाने हो कर आसोज सुदी ७ को अजमेर पहुंचे। वहां सुना कि गोघूंदे के लश्कर में रास्तों की तकलीफों से नाज कम आया है और कुंवर मानसिंह ने राणा का मुल्क लूटने की मनाई कर रक्खी है इस सबब से गोघूंदे में बड़ी तकलीफ़ है। इसके सिवाय कुंवर आसिफखाँ में अनबन भी है। इसपर बादशाह ने लश्कर के अमीरों के नाम छड़ी सवारी से हाजिर होने का हुक्म भेजा। जब वे हाजिर हुए तो कुंवर और आसिफखां की ड्योढ़ी कई दिन तक बन्द रक्खी फिर कसूर माफ करके रूबरू बुलाया।

"इस अवसर में महाराणा ने सिरोही के राव सुरतान· देवड़ा, जालौर के खान ताजखाँ और ईडर के राजा नारायण दास को भी अपने में शामिल कर लिया और यह सब मिलकर

अरवली पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के रास्तों पर लूट मार और फसाद करने लगे। बादशाह ने जालौर और सिरोही के ऊपर तरसूखां और रायसिंह को भेजा और वे दोनों सरदार डरकर अजमेर में बादशाह के पास हाजिर हो गए। तब बादशाह ने तरसूखां को पाटन की हुकूमत पर भेजा और रायसिंह को नांदोत में रहने का हुक्म दिया जिससे महाराणा का गुजरात में आने जाने का रास्ता बंद हो गया।

'अब बादशाह ने कातिक बदी ६ को अजमेर से गोघूंदे की तरफ कूंच किया और फौज को तो दो दिन पहिले से बकतर पाखर पहिना दिए थे। गोघूंदे पहुँच कर कुतुबुद्दीन, राजा भगवंतदास और कुंवर मानसिंह को तो पहाड़ों में महाराणा के ऊपर और कुलीचखां वगैरः को ईडर की तरफ भेजा और इनके साथ ही हाजियों के काफिले यानी संग को भी हलोदर की घाटी से गुजरात की तरफ रवाने किया और मेवाड़ के पहाड़ों में होकर ईडर पहुँचा। महाराणा और नारायणदास लूटने का काबू न पाकर एक तरफ हो गए मगर ईडर कातिक बदी १३ को फतह हो गया।

"फिर बादशाह गाजीखां वगैरः अमीरों को मोही में जो गोघूंदे से २० कोस है और अबदुलरहमान वगैरः को मदारिये में छोड़कर पूस सुदी ८ को बांसवाड़े के रास्ते से मालवे की तरफ रवाने हुए। कुतुबुद्दीनखां और राजा भगवन्त दास जो हाजियों को गुजरात की सरहद तक पहुँचा चुके थे बगैर हुक्म आकर शामिल हो गए मगर उनपर खफगी हुई और कुछ दिन तक दरबार बंद रहा।

"बादशाह उदयपुर होकर बांसवाड़े को रवाने हुए। उदयपुर में शाह फ़खरुद्दीन और जगन्नाथ को उदयपुर के दरे यानी

दहवाड़ी की घाटी में राजा भगवंतदास और सैयद अबदु-ल्लाखाँ को छोड़ कर लश्कर की अफसरी कुतुबुद्दीनखां की जगह आसिफखां को दे गए और बांसवाड़े होकर कि जहां डूँगरपुर और बांसवाड़े के रावल परताप और आसकरन हाजिर हो गए थे देपालपुर में पहुंचे और वहां कुछ दिन रहे।

"बादशाह के गोघून्दे की तरफ आने और पहाड़ों में होकर मालवे की तरफ जाने का एक मतलब यह भी था कि किसी तरह महाराणा भी दूसरे रईसों के माफिक उनके पास हाजिर हो जावें तो यह यात्रा सुफल हो जावे। मगर महाराणा तो ऐसी पट्टी पढ़े ही नहीं थे, उनको सब तरह से अपना नुकसान करना मंजूर था लेकिन बादशाह को सिर झुकाना हरगिज़ मंजूर नहीं था। और तो क्या एक भाट जिसको महाराणा ने अपनी पगड़ी दी थी जब बादशाह से मुजरा करने को गया तो उसने पगड़ी उतार हाथ में ले ली और नंगे सिर मुजरा किया। बादशाह ने सबब पूछा तो कहा कि यह पगड़ी राणा प्रतापसिंह की है जिसने कभी किसी हिन्दू मुसलमान को सिर नहीं झुकाया है, इसलिये मैंने भी उसका अदब रक्खा।

"बादशाह कम से कम ६ महीने के करीब महाराणा के मुल्क में और उसके आस पास रहे और उन्होंने महाराणा के तंग करने में भी कसर नहीं रक्खी, तो भी महाराणा ने कुछ परवाह न की और सलाम तक उनको नहीं कहला कर भेजा बल्कि हर तरह से उनको दिक करते रहे और जब देखा कि बादशाह उनके मुल्क से निकल गए तो पहाड़ों से उतर कर बादशाही थानों पर चढ़ाई करना शुरू किया और मेवाड़ की तरफ से आगरे का और बादशाह के लश्कर का रास्ता बंद कर दिया जैसा कि मुल्ला अबदुलकादिर लिखता है कि मैं उस

वक्त बीमारी के सबब से वतन में रह गया था और बांसवाड़े में से लश्कर में जाना चाहता था मगर हिंडोन में अवदुल्लाखां ने वह रास्ता वंद और भयानक बताकर मुझ को लौटाया, तब मैं ग्वालियर सारंगपुर और उज्जैन के रास्ते से देपालपुर में जाकर बादशाह के पास हाजिर हुआ।

"इस अरसे में सुरतान देवड़ा भी बादशाह के लश्कर से भाग कर सिरोही में जा पहुंचा था और ईडर का राव नारायणदास भी फिसाद करने लगा था। बादशाह ने यह खबरें सुनकर माघ सुदी ७ को फिर राजा भगवंतदास, कुंवर मान सिंह, मिरजाखां और कासिमखां वगैरः को गोगूंदे की तरफ भेजा और सुरतान देवड़े के वास्ते राय रायसिंह को और नारायणदास की बाबत आसिफ़खां को लिखा कि राय रायसिंह ने तो सिरोही और आबूगढ़ सुरतान से छीन लिया और आसिफखां के ऊपर नारायणदास को महाराणा ने मदद देकर भेजा। वह ईडर से दस कोस पर पहुंच कर बादशाही थाने ईडर पर छापा मारना चाहता था कि आसिफखां ने फागुन सुदी ६ को सात कोस आगे जाकर मुकाबिला किया और लड़ाई में हरा कर भगा दिया; लेकिन राजा भगवंतदास और मिरजाखां वगैरः से कुछ वंदोबस्त महाराणा का न हो सका, वे उसी तरह थानों के ऊपर दौड़ते रहे। बादशाही अमीर उनके पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे मगर उन तक पंहुच भी नहीं सकते थे और जब कि वे पहाड़ को महाराणा का ठहरना सुनकर घेरते थे तो महाराणा दूसरे पहाड़ से निकलकर छापा मार जाते थे। वे कभी एक जगह या किले में जमकर नहीं बैठते थे कि इसमें बाजे वक्त बहुत मुशकिल पड़ जाती है। हमेशा इधर उधर बादशाही अमीरों की देख

भाल में फिरा करते थे। इस दौड़ धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोघूँदे से बादशाही थाने उठ गए और मोही का थानेदार मुजाहदबेग मारा गया।

बादशाह का दुबारा अजमेर में आना।

"अकबर बादशाह कातिक बदी १२ को मामूल के माफिक फिर अजमेर आए और अगली फ़ौज से मेवाड़ में कुछ काम निकला हुआ न देखकर कातिक सुदी १५ को मेड़ते से फिर एक फौज महाराणा के ऊपर भेजी। उसमें अफसर तो वही राजा भगवंतदास, कुँवर मानसिंह, पायंदाखां, मुग़ल सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू असदतुर्कमान और गजरा चौहान वगैरः थे लेकिन बखशी आसिफखां की जगह शहबाज खां को किया और इख्तियार भी कुल फ़ौज़ का उसी को दिया। यह बड़ा चालाक अफ़सर था। इसने पहिले तो हाजियों के क़ाफ़िले को जिसके साथ बहुत रुपया मक्के को भेजा गया था महाराणा की सरहद से पार उतार दिया और फिर बादशाही थाने देखकर सरहद के ज़ावते के लिए बादशाह से और मदद मांगी। बादशाह ने शेख़ इब्राहीम फ़तहपुरी को कुछ फ़ौज देकर भेजा। उसके पहुंचने पर शहबाज़खां ने महाराणा से कुँभलगढ़ ले लेने का इरादा करके राजा भगवंतदास और कुँवर मानसिंह को तो तरफ़दारी के वहम से बादशाह के पास जाने की सीख दे दी और फिर शरीफ़खां, गाज़ीखां और मिरज़ाखां वगैरः के साथ जाकर उस क़िले को घेरा। बैसाख *

१ मेवाड़ में असाड़ बदी १५ संवत १६३५ मानते हैं। हमने वैसाख बदी १२ अकबरनामे में लिखी हुई तारीख २४ फरवरदीन से

बदी १२ संबत १६३५ को महाराणा ने अंदर से लड़ाई की। मगर १ बड़ी तोप के फट जाने से क़िले का सामान जल गया।

महाराणा लाचार किला छोड़कर बांसवाड़े की तरफ़ निकल गए मगर उनके नामी रजपूत पहिले क़िले के दरवाजे पर लड़े और फिर मंदिरों और घरों के आगे बहादुरी से मुकाबिला करके काम आए। शहबाज़ख़ां ग़ाज़ीख़ां को किले में छोड़कर महाराणा के पीछे रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोघूँदे में और आधी रात को उदयपुर में अमल किया और बहुत सा माल लूटा।

"मूता नेणसी की ख्यात में लिखा है कि अकबर की फ़ौज ने संवत १६३३ में कूँभलमेर फ़तह किया, सोनगराभान, अखेराजीत और कई चाकर राणा जी के मारे गए। मालूम नहीं कि यह दो बरस की गलती संबत में क्यों है।

"महाराणा शहबाज़ख़ां को पहाड़ों में बहुत लिए लिए फिरे मगर हाथ नहीं आए। आख़िर उसने थककर पीछा छोड़ दिया और पता लगाकर उनका डेरा लूट लिया। राय सुरजन हाड़ा का बेटा दूदा जो बादशाह से बाग़ी रहा करता था और बरस दिन पहिले बादशाही लश्कर से लड़कर महाराणा के पास चला आया था, शहबाज़ख़ां के पास हाज़िर हो गया। वह उसी को लेकर पञ्जाब में बादशाह के पास गया।

हिसाब करके लिखी है। इससे २ महीने का फरक आता है; मगर फरवरदीन महीना कभी असाढ़ में नहीं आता, चैत बैसाख में ही आता है जब कि सूरज मेष राशि पर हो। शायद ऐसा हुआ हो कि लड़ाई बैसाख बदी १२ को शुरू हुई और किला असाढ़ बदी १५ को फतह हुआ।

आषाढ़ सुदी १३ संवत १५३५ को उसका मुजरा हुआ। बादशाह ने उसकी अरज़ से दूदा के कसूर बख़्श दिए।

"शहबाज़खां के जाने पर महाराणा बाँसवाड़े की तरफ़ से छप्पन के पहाड़ों में आए और बादशाही थानों को काटने लगे। बादशाह ने फिर पोष वदी १४ संवत ३५ को शहबाज़खां और ग़ाज़ीख़ां को भेज मुहम्मद हुसेन, शेख तेमूर बदख़शी और मीरज़ादा अलीखां और बहुत से अमीरों को साथ किया। महाराणा फिर पहाड़ों के ऊपर चढ़ गए। शहबाज़खां फिर दो तीन महीने तक मेवाड़ में फिरा और थानों में हर जगह कारगुज़ार आदमी रख कर पीछे चला गया और जेठ सुदी १४ संवत १६३६ को बादशाह के पास पहुंचा और महाराणा को फिर अपने काम करने का मौका मिल गया जिससे कातिक वदी १३ संवत १६३६ को बादशाह खुद अजमेर में आए और सुदी १२ को पीछे जाने लगे। तब मुकाम सांभर से फिर शहबाज़ख़ाँ को सूबे अजमेर का बन्दोबस्त कायम रखने के वास्ते छोड़ गए। इससे पाया जाता है कि महाराणा ने मेवाड़ के सिवाय और जगह भी सूबे अजमेर में दस्तन्दाज़ी की थी।

"शहबाज़खां ने फिर महाराणा का पीछा किया। इस दफे उनको बहुत मुश्किल पड़ी, खाना खाने तक की फुरसत नहीं मिलती थी। जिधर जाते थे दुश्मन पीछा दबाए चला आता था। एक दिन ऐसा हुआ कि पाँच दफे खाना छोड़ कर भागना पड़ा। ऐसा विखा कभी किसी को नहीं हुआ होगा कि दुश्मन हर दम तलवार लिए हुए सिर पर खड़ा मिले और विखे का भुगतना भी महाराणा प्रतापसिंह का ही काम था कि जो ऐसी वैसी कड़ी झेलते थे। बड़े लोगों ने जो यह वचन कहा है कि सूरवीर उसको कहना चाहिए कि जिसके

तेवर हार में भी न बदलें सो यह महाराणा प्रतापसिंह में अच्छी तरह से देखा जाता था कि हार पर हार होती थी और ज़मीन सब जाती रही थी तो भी लड़ने मरने ही पर तैयार रहते थे और दीन वचन मुंह से कभी नहीं निकालते थे। टाड राजस्थान में लिखा है कि एक दफ़े उनकी बेटी अपने हिस्से की रोटी आधी तो खा गई थी और आधी दूसरी बार के वास्ते रख छोड़ी थी कि एक बिल्ली आई और उसको खा गई जिसके वास्ते वह लड़की चिल्ला कर रोई। यह दुःख महाराणा से नहीं सहा गया और उन्होंने अकबर को लिखा कि मेरी तकलीफ़ कम करो। अकबर इससे बड़ी शेख़ी में आ गया और दरबार करके यह लिखावट सब को दिखाई। बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज * ने कहा कि

---

* पृथ्वीराज के विषय में "भक्तमाल" में नामा जी लिखते हैं—

नर देव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुन नव रस॥
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस।
परिदुख विदुख सलाघ्य वचन रसना जु विचारै॥
अर्थ विचित्रनि मोल सबै सागर उद्धारै।
रुक्मिणि लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्यान सुव॥
नर देव उभै भाषा—१४०

टीका। प्रियादास जी लिखित—माड़वार देश बीकानेर को नरेश बड़ो पृथ्वीराज नाम भक्तिराज कविराज है। सेवा अनुराग अरु नियम वैराग्य ऐसी रानी पहिचानी नाहिं मानो देखी आज है। गयो विदेश तहां मानसी प्रवेश कियो हियो नहीं छुवै कैसे सर मन काज

यह किसी ने राणा के नाम पर बट्टा लगाने के वास्ते जाल-साजी की है। राणा को मैं जानता हूँ। वह कभी ऐसा हर्फ़ नहीं लिखेगा और फिर पृथ्वीराज ने महाराणा को इस हरकत से रोकने के वास्ते बहुत से चमतकारी दोहे बनाकर भेजे जिनके सुनने से महाराणा को १०००० घोड़े का बल हो गया सो हमारे समझ में निरी कहानी मालूम होती है, क्योंकि अकबर बादशाह की किसी तवारीख़ से भी नहीं पाया जाता है कि महाराणा ने कभी कोई ऐसी दरख्वास्त बादशाह से की हो। जो की होती तो अबुलफ़ज़ल जिसने ज़रा ज़रा सी बात को

है। बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर के दीठ परे पाछे हरि देखि भयो सुख को समाज है ॥ ५३० ॥ लिखि कै पठायो देश सुन्दर स्वदेश यह मन्दिर न देख हरि बीते दिन तीन है। लिख्यो आयो सांचु बांचि अतिही प्रसन्न भये लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है। सुनी और एक यों प्रतिज्ञा करि हिय धरी मथुरा शरीर त्यागि करै रस लीन है। पृथ्वीपान जानि कै मुहीम भई काबिल की बल अधिकाई नहीं काल के अधीन है ॥ ५३१ ॥ जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन कलप समान बीति पल न विहात है। आगम जनाइ दियो वाहे इन्हें सांचो कियो लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात है। चल्यो चढ़ि सांड़िनी पै लई मधुपुरी आनि करिके स्नान प्रान तजे सुनी बाल है। जय जय ध्वनि भई गई व्यापि चहुं ओर अहो भूपति चकोर जस चन्द दिन रात है ॥ ५३२

बाबू शिवसिंह और डाक्टर ग्रिअर्सन साहब ने भी अपने ग्रन्थों में पृथ्वीराज का वर्णन किया है।

श्री राधाकृष्णदास।

बना बना कर लिखा है इसको राई का पहाड़ बनाकर लिखता। मगर कहीं अकबरनामे में ऐसा ज़िक्र नहीं है जिससे यह बात साफ़ बनावट की मालूम होती है। हां, यह सही है कि जब शहबाज़ख़ां का पीछा लेने से महाराणा के पांव उखड़ गए और उनको कहीं आस पास ठहरने के लिये जगह नहीं मिली तो वे मूँधा के पहाड़ों में जो आबू से १२ कोस पच्छिम में है जहां पहिले राणा मोकलसीजी भी विखे में रह चुके थे, चले गए। वहां देवल राजपूतों की बस्ती है। उन्होंने महाराणा की बहुत आवभगती की और लायाणे ठाकुर रायधवल ने जो सब देवलों में पाटवी था अपने पास कोई अच्छी चीज़ उनकी नज़र के लायक़ न देखकर अपती बेटी उनको व्याह दी और पहाड़ के ऊपर उनको बड़ी ख़ातिर और हिफ़ाजत से रक्खा। महाराणा ने वहाँ बाग़ लगाया और बावड़ी बनवाई जो अब तक मौजूद है।

"मूँधा पहाड़ पर रहने से मेवाड़ में फिर कुछ पता महाराणा का शहबाज़ख़ां को नहीं लगा और उसी अरसे में बादशाह का हुक्म उसके नाम पूरब में जाने के वास्ते आया जहां और बिहार के अमीर बाग़ी होकर फ़साद कर रहे थे। शहबाज़ख़ां मेवाड़ से रवाने होकर आसाढ़ सुदी ९ संवत १६३७ (मेवाड़ी १६३६) को फ़तहपुर में बादशाह के पास पहुंचा। महाराणा उसका जाना सुनकर अपने मुल्क में आने के वास्ते रायधवल से रुख़सत हुए। उस वक्त रायधवल की ख़िदमतों का इनाम देने के वास्ते उनके पास कुछ न था तो भी उसको राणा का खिताब देकर अपने बराबर कर लिया।

"बादशाह ने शहबाज़ख़ां की जगह रुस्तमख़ां को अजमेर का सूबेदार करके भेजा था। वह चार महीने में ही कछवाहों

के मुक़ाबिले में मारा गया। उसकी जगह मिरज़ाख़ां * मुक़र्रर होकर आया जो बाद को ख़ानख़ाना कहलाया। मालूम होता है कि यह महाराणा का दोस्त था और महाराणा की तारीफ़ में इसके बनाए हुए दोहे बहुत मशहूर हैं। इसने महाराणा से छेड़ नहीं की जिससे उनका जमाव अपने मुल्क में फिर हो गया और वे धीरे धीरे आगे भी बढ़ने लगे।

"मूता नेणसी ने लिखा है कि वैसाख सुदी संवत ३८—३६ में महाराणा ने शेरपुरे का थाना मारा। यहां मिरज़ाख़ां की बेगम पकड़ी गई मगर महाराणा ने बहुत इज़्ज़त और हुरमत के साथ पीछे मिर्ज़ाख़ां के पास भेज दी।

"राजप्रशस्ती में लिखा है कि कुँवर अमरसिंह मिरज़ाख़ां के कबीलों को पकड़ लाया था जब कि बादशाह उसको गोघूँदे छोड़ गए थे और महाराणा ने फ़ौरन उसको मिरज़ाख़ां के पास पहुंचा दिया।

"ख़ैर कभी हुआ हो यह काम बड़ी भलाई का था जो महाराणा की तरफ़ से अपने दुश्मनों के साथ हुआ और शायद इस इहसान के बदले में ख़ानख़ाना ने वे दोहे महाराणा की तारीफ़ में बनाए हों।

"मिरज़ाख़ां संवत १६३८ के पौष तक अजमेर के सूबे में रहा क्योंकि माघ सुदी ६ को जब कि बादशाह काबुल से फतेहपुर में पीछे आए थे अकबरनामे में उसका नाम दरबारियों में लिखा है और उस दिन नगर चेन में बख़शियों ने बादशाह के हुक्म से उसको शहबाज़ख़ां के ऊपर खड़ा किया था। इससे शहबाज़ख़ां ने बुरा माना और अदूल हुक्मी करने को

* अबदुल रहीमखां खानखाना।

तैयार हुआ। बादशाह ने ख़फ़ा होकर उसको रायसाल दरबारी के पहरे में बिठा दिया।

"इससे मालूम होता है कि मिरज़ाख़ां माह में या कुछ पहिले अजमेर से चला गया था और फिर इस काम पर नहीं आया।

"मिरज़ाख़ां के जाने से महाराणा को और सुभीता हुआ। वे फिर अपना मुल्क दबाने लगे। हर एक थानेपर लड़ाई शुरू हुई; रास्ते बंद हो गए। फिर बादशाह तक पुकार पहुंची, बादशाह ने इस दफ़े जगन्नाथ कछवाहे की अफ़सरी में फ़ौज तय्यार की। बख़्शीगीरी मिरज़ा जाफ़रबेग को दी। फागुन वदी १ को यह लोग रवाने हुए। सैयद राजू को मांडल में छोड़कर महाराणा के ऊपर गए। महाराणा दूसरे घाटी से निकल कर मेवाड़ में आए और कई गांव लूट लिए। सैयद राजू लड़ने को गया तब चित्तौर की तरफ़ मुड़े। उधरसे जगन्नाथ भी आ गया मगर राणा जी तो लड़ते मारते पहाड़ों में चले गए और कुछ अरसे पीछे फिर आए। यह फिर पीछे पड़े। एक दफे बहुत ही पास जा पहुंचे थे मगर महाराणा फिर भी हाथ न आए। तब यह पता लगाकर उनके क़बीलोंके ऊपर गए जो एक विकट जगह पर भीलों की हिफ़ाज़त में थे मगर महाराणा को ख़बर हो गई और वे उनको भी ले गए। ये गुजरात की सरहद तक पीछे गए मगर महाराणा का पता न लगा तब डूंगरपुर के रावल से जुरमाना लेकर लौट आए।

"ग़रज़ इसी तरह से जगन्नाथ भी दो बरस तक पहाड़ों में भटकता रहा फिर मजाहदबेग की बदली तो बादशाह ने इलाहाबाद के सूबे में कर दी और जगन्नाथ भी संवत १६४२ में काश्मीर को चला गया।

महाराणा की फ़तह ।

"इस वक्त से महाराणा के दिन फिरे। बादशाह की फिर कोई फ़ौज नहीं आई। अकबरनामे में १२ बरस यानी १६५३ तक महाराणा का जिक्र नहीं आता है। सिर्फ उस संवत् में उनके मरने की ख़बर लिखी है। इतनी मुद्दत तक बादशाह के चुप रहने और फ़ौज नहीं भेजने का यह सबब था कि संवत् १६४१ से पंजाब में रहते थे और उनका ध्यान ज़ियादा तर उत्तर और पश्चिम की तरफ था क्योंकि तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखां उजबक से बिगाड़ होगया था और अकसर ख़बरें उसके काबुल और हिन्दुस्तान के ऊपर चढ़ाई करने की उड़ा करती थीं।

"टाड राजस्थान में लिखा है कि महाराणा के ऊपर तकलीफ़ देखकर उनके पुश्तैनी दीवान भीमाशा का जो जला और जो दौलत उसके बाप दादा की जोड़ी हुई चली आती थी वह सब उसने महाराणा के नज़र कर दी और महाराणा उस रुपए से घोड़ा और राजपूतों की सजाई करके बादशाही लश्कर पर जो दवेर में पड़ा था जा पड़े और उसको गाजर मूली की तरह से काटकर भागे हुओं के पीछे आमेट तक गए और उसी गरमागरमी में कुम्भलमेर के ऊपर हमला करके अब्दुल्ला और उसके लश्कर को काट डाला और फिर उसी तरह दुश्मनों के २२ थाने छीन कर उनको मार भगाया।

"मेवाड़ की तवारीख़ लिखनेवाले कहते हैं कि एक ही साल यानी संवत् १६४२ की लड़ाई में तमाम मेवाड़ अजमेर चित्तौर और मांडलगढ़ के सिवाय दुबारा फ़तह हो गया और हिन्दूपति ने, राजा मानसिंह और जगन्नाथ को बदला देने के लिये जो फूले फूले फिरते थे कि हमने महाराणा को कैसा

ख़राब कर दिया, आमेर के ऊपर हमला किया और उसके मालदार शहर मालपुरे को लूट कर ख़ाक में मिला दिया।

"महाराणा की बाकी उमर आराम से गुजरी क्योंकि १२ बरस तक फिर कोई चढ़ाई मुग़लों की नहीं हुई। इस मुद्दत में उन्होंने अपने उजड़े मुल्क को संभाला। उदयपुर को जो दुश्मनों की चढ़ाइयों से बसते बसते रह गया था नए सिरे से बसाया, सरदारों को जो विखे में साथ रहे थे बड़ी बड़ी जागीरें दीं और उनके दरजे और कुर्ब जियादे किए।

महाराणा का इन्तकाल।

'संवत् १६५३ में महाराणा का देहान्त हुआ। मिती मालूम नहीं हुई, न टाड राजस्थान में देखी गई, न मूता नेणसी की ख्यात में है। मगर अकबरनामे में लिखा है कि तारीख बहमन सन् ४१ जलूसी को राणा * कीका का जमाना खतम हो गया। उसके अधर्मी बेटे अमरा ने जहर खिला दिया और एक कड़ी कमान के खैंचने से भी झटका लगा था सो हिसाब लगाने से यह तारीख माघ सुदी पंचमी संवत् + १६५३ के मुताबिक होती है।

टाड राजस्थान में महाराणा के मरने का हाल इस तौर पर लिखा है।

"महाराणा की तमाम उमर बिखे और लड़ाइयों में गुज़री, उनका तमाम बदन ज़ख़मों से चूर था, वे ग़म और फ़िक्र के मारे जवानी में ही वृद्ध हो गए थे, उनके हाथ पांव रात दिन

* अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को कीका कहते थे।
+ इस लिखने के पीछे हमको उदयपुरी एक मित्र की लिखावट से मालूम हुआ कि महाराणा का देहांत माह सुदी ११ को हुआ।

की दौड़धूप से ढीले हो गए थे, कमज़ोरी से उनको तरह तरह की बीमारियां पैदा हुईं। उनके मरने की हालत भी उनकी बहादुरी साबित करती थी। उन्होंने अपने वली अहद को क़सम दिलाई कि तुम हमेशा दुश्मन से लड़ते रहना और कभी लड़ाई से पीछे मत हटना। अमरसिंह ने क़सम खाई और वचन दिया तो भी महाराणा को तसल्ली न हुई क्योंकि वे जानते थे कि मेरा बेटा कभी आज़ादी और बिखे की तकलीफों को न सह सकेगा और सबब ऐसा समझने का यह था कि महाराणा और उनके साथियों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोंपड़े डाल रक्खे थे जिन में वे अपने बिखे के दिन तै करते थे और अंधेरे और मेह में सिर छिपाकर बैठ जाते थे। राजकुमार अमरसिंह को यह ख्याल तो रहा नहीं कि झोंपड़ा बहुत नीचा है और उस का एक बांस बाहर को निकला हुआ है और वैसे ही निकल खड़े हुए. मुड़ास, डांड़े में अटका उसको वैसाही ऐंचते हुए चले गए।

"धीरे धीरे महाराणा ने जो अपने बेटे की यह जल्दबाजी देखी तो उनको बड़ा रंज हुआ और उन्होंने जान लिया कि वह कभी उन मेहनतों को नहीं झेल सकेगा जो दुश्मनों से लड़ने में आ पड़ती हैं।

"हिन्दूपति उस वक्त एक टूटे से झोंपड़े में थे और उनके सरदार जो बुरे वक्तों में आड़े आए थे सब उनके सिरहाने बैठे थे और उनके दम तोड़ने की हालत को बड़ी लाचारी, बेवसी और दुःख से देख रहे थे। जब बहुत देर हुई तो सलूमर के सरदार ने ठंढी सांस भर कर पूछा कि ऐसी क्या मुश्किल आप की जान पर पड़ी है जो वह निकलती नहीं।

"महाराणा ने संभाला लेकर जवाब दिया कि मेरी यह

तसल्ली करो कि यह मुल्क मेरे पीछे कहीं तुरकों को तो नहीं दे दिया जावेगा। मैं उस झोपड़ेवाली कैफियत से अपने बेटे के मिजाज का हाल मालूम करके तो यही समझ रहा हूं कि वह इनकी जगह बड़े बड़े ऊंचे मकान और महल बनवावेगा और उनमें आराम से बैठ जावेगा और मेवाड़ का स्वतंत्रपना कि जिसके वास्ते मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से जाता रहेगा। क्या तुम लोग भी उसी के माफ़िक करोगे? सरदारों ने यह सुनकर बाप्पारावल के तख़्त की क़सम खाई और कहा कि हम राजकुमार की तरफ से ज़ामिन होते हैं कि जब तक मेवाड़ की आज़ादी (स्वतंत्रता) दुबारा हासिल नहीं हो जावेगी हम कभी राजकुमार को महल नहीं बनाने देंगे और न आराम से बैठने देंगे।

"इस बात के सुनने से महाराणा को पूरी तसल्ली हो गई और फिर उनकी जान झट से निकल गई।

"टाड साहब कहते हैं कि उन मुल्कों के मालिक को कि जो उथला पुथली से बचे हुए हों सोचना चाहिए कि कितनी बहादुरी और सूरबीरपने का जोश इस राजपूत बादशाह में होगा जिसने थोड़ी सी ही फौज और दौलत से ऐसे बड़े शहनशाह का सामना किया जिसका लश्कर गिनती में उस दम (मेकदार) में ही कहीं ज्यादा था कि जो कभी ईरानी लोग यूनान के ऊपर चढ़ा ले गए थे।

"अरवली पहाड़ में कोई ऐसी घाटी नहीं है कि जहां महाराणा ने कोई काम बहादुरी का न किया हो जिसमें उनको या तो फ़तह हुई या ऐसी शिकस्त कि जिससे उनकी और शान बढ़ गई हो और नाम भी हुआ हो। इन लड़ाइयों में से हल्दी घाटी और देवर की लड़ाई ज़्यादा मशहूर है।"

श्रीहरिः

राजस्थान-केशरी

अथवा

महाराणा प्रतापसिंह।

छप्पय।

प्रभु की बातहिं टारि आपुनी बातहिं राखूँ।
हरि को शस्त्र गहाऊं कै निज शस्त्रहिं नाखूँ।
पांडव दलहिं कँपाइ कृष्ण बच टारन भाखूँ।
चक्र धारि धावत लखि जीवन फल निज चाखूँ।
इमि दृढ़प्रतिज्ञ लखि बीरबर धाए तुरतहिं चक्र लै।
जय भक्तमानरच्छक सदा जादवपति जय जयति जै॥१॥

(इति नान्दी)

(सूत्रधार का प्रवेश)

सू०। (चारों ओर देख कर) आहा! संसार कैसा परिवर्तन-शील है! क्षण क्षण पर इसका रूप बदलता रहता है। देखो क्या यह वही भारतभूमि है जिसमें एक समय लोग विमानों पर आकाश मार्ग में विहार करते थे, तपबल से ऋषिगण जिधर निकलते थे, प्रकाश हो जाता था। विद्या, कला, कौशल प्राणी मात्र में शोभा पाती थी। अवश्य अब वे सब बातें दूर गईं, अब यह भारत वह भारत नहीं है, परन्तु क्या यह भारत वह भारत ही

नहीं है? अथवा अब इसमें कोई शोभा ही नहीं है? नहीं ऐसा कदापि नहीं, यह भारत वही भारत है. इसमें सभी कुछ वर्तमान है परन्तु काल के प्रभाव से रूपांतर अवश्य होगया है. परन्तु वही भूमि, वही आकाश, वही मनुष्य, वही पशु पत्ती, सब वही हैं। उस समय की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी. उस समय विमान पर लोग घूमते थे. इस समय रेल रूपी धूम्रयान पर, उस समय योगवल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ़ द्वारा; उस समय सुन्दर रथों पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइक्स की बड़ी वड़ी फ़िटनें वेलर की जोड़ियां चौड़ी चौड़ी सड़कों की शोभा वढ़ाती हैं, उस समय सोने चाँदी के रत्नजटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुन्दर शीशे के ग्लास रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं उस समय सोने चाँदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था, इस समय काग़ज़ के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली में वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी. इस समय क़दम क़दम पर अंग्रेज़ी की धारा वहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है. शहरों में लंबी चौड़ी हवादार सडकें बन गई हैं, उनमें लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

(परिपार्श्वक का प्रवेश)

परि०। मित्र! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो? इन निरर्थक बकवादों से क्या लाभ है? देखो यह कैसा

भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर वृटिश गवर्न्मेंएट को घेर रक्खा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल में मत्त रहना उचित है?

सूत्र०। भाई! यह तो तुमने ठीक कहा परन्तु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्न्मेंएट को सहायता ही क्या दे सकते हैं?

परि०। क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ा कर कैसे उमङ्ग के साथ लड़ा दिया करते थे?

सूत्र०। हां हां यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या? हम कुछ कवि तो हैं ही नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रह कर वीरों का उमङ्ग बढ़ा सकें।

परि०। तुमने समझा नहीं। काव्य दो प्रकार के होते हैं, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है उसका अनुभव तो तुम्हें नित्य ही हुआ करता है, हमारी इच्छा है कि हम लोग ऐसे वीररस पूर्ण नाटक खेलें कि जिससे हमारे भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो कर अपने शत्रुओंसे जी छोड़ कर लड़ें। भारत संरक्षण अकेले अंग्रेजों के किए कदापि नहीं हो सकता जब तक कि हिन्दुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिखलावें, क्योंकि यह हिन्दुओं का देश है, हिन्दू प्रजा ही यहां विशेष रहती है और

सरकारी पल्टनों में भी हिन्दू ही विशेष हैं, अतएव आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जांय ।

सूत्र० । हां यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और इसीकी समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है । परन्तु ऐसा कौन सा नाटक है ?

परि० । क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो ।

सूत्र० । नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरञ्जक भी हो और उत्साहवर्द्धक भी हो ।

परि० । आहा ! अच्छी याद आई, अभी हम लोगों के परम प्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के वात्सल्य भाजन बन्धु श्रीराधाकृष्ण दास ने महाराणा प्रतापसिंह का नाटक लिखा है; उसको खेलो । वह समयानुकूल है, क्योंकि एक तो वीर केशरी प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत्प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व वर्णन सभी को अच्छा लगेगा और अकबर के काल से अंग्रेजी काल में बहुत बातों में समानता भी है ।

सूत्र० । बस बस ठीक कहा, चलो शीघ्रता करो लोग उकता रहे हैं ।

(दोनों जाते हैं ।)

प्रथम अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान-उदयपुर राजदरबार।)

(महाराणा प्रतापसिंह, भीमाशा मंत्री तथा कृष्णसिंह आदि सरदारगण)

(नेपथ्य में)

जय जय भानु-वंश में भानु।
जासु प्रताप प्रकाशित जग में चहुं दिसि भानु समान।
जाके हृदय सदा ही जागत सुभग आर्य कुल कान॥
सोई या डूबे भारत असि रच्छन को इक म्यान॥ १॥

प्रतापसिंह। हाय ! मेरे हृदय में इस सिंहासन पर पैर रखते अग्निज्वाला सी भभक उठती है, यह राज्यसिंहासन कंटकमय प्रतीत होता है। मेरे प्यारे सरदारो ! जिस दिन से हमारे पिता ने इस आसन पर पैर रक्खा उसी दिन से इसका पतन आरम्भ हुआ, इस उदयपुर का उदय हृदय को शोकाकुल कर देता है, हाय अम्बर, जोधपुर, बीकानेर आदि महाराज लोग आज दिन यवनों से घनिष्ठ सम्बन्ध करने और बेटी ब्याहने में अपने को धन्य मानते हैं और इसमें अपना गौरव समझते हैं और कहां तक, इस पवित्र सिसोदिया कुल के कलङ्क सक्ता जी ने भी अकबर के कृपापात्र हो कर सेवकाई स्वीकार कर ली है।

कृष्णसिंह। महाराज आप यथार्थ कहते हैं, एक मान-संभ्रम ही में क्यों, खजाने की दशा भी तो शोचनीय हो रही है।

भीमाशा। यथार्थ आज्ञा होती है अन्नदाता जी। खजाने की तो बात ही न पूछिए, आज कै कै बरस से इन दुष्टों के उपद्रव और लड़ाई से मालगुजारी एक पैसा नहीं मिलती, स्वर्ग सदृश मेवाड़ प्रान्त मानों जङ्गल हो रहा है।

प्रतापसिंह। ऐसी राज्यगद्दी से तो तापस वेष अच्छा। यदि यह बखेड़ा पीछे न लगा होता तो आज दिन हम एकान्त में भगवान का भजन तो करते होते! अब तो सांप छछुन्दर सी गति हो रही है। हमने व्यर्थ इस गद्दी को कलङ्कित किया।

रामसिंह। महाराज, यह आप क्या कहते हैं? इस पवित्र वंश की महिमा स्वर्ग तक फैल रही है, बाप्पा रावल से लेकर आज तक इस गद्दी का नाम परमेश्वर ने रक्खा है। आप ऐसा जी न करें। सिंह के सिंह होते हैं। जिस समय आप कृपाणहस्त हो कर सिंहनाद करेंगे, ये सब गीदड़ जहां के तहां दबक रहेंगे।

प्रतापसिंह। यह ठीक है; पर समय फिर गया है। देखिए, चारों ओर म्लेच्छगण छा गए हैं, राजपूत राजा लोग इनके सम्बन्धी बनने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। आप ही के घर के सक्ता जी ने उनकी वश्यता कर ली है। स्वदेशप्रेमी वीर राजपूतगण मन ही मन जल रहे हैं, ऐसे दुःसमय में कहिए क्या हो सकता है?

कृष्णसिंह। महाराज, आपका ध्यान किधर है? इन बातों को आप कभी स्वप्न में भी न विचारिए। परमेश्वर बड़े ही को बड़ा करता है, जिसके हाथ असि धारण करने की सामर्थ्य है, जिसका हृदय साहस और बल से पूर्ण है, जिसका मस्तिष्क स्वाधीन भाव से भरा है

उसी महापुरुष के सिर राज्यमुकुट शोभा देता है । उसके वीर दर्प के आगे किस का सामर्थ्य जो ठहर सके ? देखिए सिंह को मृगराज कौन बनाता है ? गरुड़ को पक्षिराज का तिलक किसने किया है ? और आपके पूर्वजों को इस राज्यासन पर किसने बिठाया है ? केवल अपने बाहुबल से, अपने स्वाभाविक तेज से, अपने हृदय की दृढ़ता से । सूर्यका प्रकाश होने पर भी क्या दुष्ट चोर गण इधर उधर नहीं भागते ? क्या प्रताप के प्रतापोदय होने पर ये दुराचारी खड़े रह सकते हैं ?

मानसिंह । महाराज तनिक आंख खोलकर देखिए, इस समय स्वदेशभक्त प्रजा मात्र आपकी बाट जोह रही है; वीरों की दक्षिण भुजा बार बार आप ही के भरोसे फड़क रही है, सब एक दृष्टि आप ही की ओर देख रहे हैं, आपके उठने ही से फिर सब सामान एकत्र हो जायंगे ! संसार में कीर्ति ही मुख्य है, शरीर का क्या है, यह तो तो नाशमान हुई है । आप स्मरण करें किस महान वंश में आप का अवतार हुआ है । सिंह के बच्चे को क्या कोई शिकार करना सिखा सकता है ? आप क्या अपने कुल का यह वाक्य भूल गए ?

"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"

(नेपथ्य में)

सिसोदिया कुल साख, जान चहत बिन तुव उठे ।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर ॥

प्रतापसिंह । हैं ! यह अमृत वर्षा किसने की ?

चोबदार । धर्मावतार, कविराजा जी पधारते हैं ।

प्रतापसिंह । आदर के साथ लिवा लाओ ।

(कविराजा का प्रवेश)

कविराजा । घणी खमा अन्नदाता—

गुणगाहक नरपाल, राजपूत कुल केशरी ।
गो ब्राह्मण प्रतिपाल, तुव प्रताप दिन दिन बढ़े ॥

कृष्णसिंह । कविराजा जी, आप बड़े समय पधारे । इस समय इस राज्य की वर्तमान दशा पर विचार हो रहा था । ऐसे समय में आपका पधारना परम मंगलसूचक है ।

कविराजा । महाराज, इस समय का विचार ही क्या ?

सुनिए—

जब लौं उगे न भानु तबहि लौं जग अंधियारो । जब प्रताप भयो उदय भयो मंगल जग सारो । जबहि धार असि हाथ सिंह सम टुक हंकारो । तबहिं शत्रु धड़ शीश आपुही ह्वै हैं न्यारो ॥ शत्रु नारि सौभाग्य तजि बिधवा लच्छन धारि हैं । बालक गण निज पितृ को तबही पिण्डा पारिहैं ॥

खंडेराव । वाह कविराजा जी वाह, क्या अच्छी बात कही है, भविष्यत् का कैसा सुन्दर चित्र आंख के सामने खींच दिया है ।

कविराजा । महाराज सुनिए पूर्वपुरुषों की कीर्ति सुनिए—

सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत में कीरति छाई ।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहिं नसाई ॥
तिनके लव सुत भए शत्रु हति कीरति थापी ।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी कांपी ॥
जनमे जंगल माँहि आइ चित्तौरहिं छीन्यो ।
मोरि वंश परमार मार मेवारहिं लीन्यौ ॥
हिंदूपति हिंदुकुल सूरज नाम धारिकै ।

हिंदू जस की ध्वजा उड़ाई गगन फारिकै॥
नवएं भए खुमान पराक्रम जग में छायो।
काबुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो॥
समरसिंह भए समर सिंह भारत रखवारे।
पृथ्विराज सँग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे॥
कर्म देवि पति राज्य पुत्र सह रत्तन कीनो।
कुतुबुद्दिनहिं हराइ यवन मसि टीका दीनो॥
करणसिंह तब यथा समय निज राज संभारयो।
ता सुत रावल महप तिनहिं झालोरे मारयो॥
रहप सिंह झालोर मारि निज राजहिं थाप्यो।
रावल नामहिं पलटि महाराणा जग छाप्यो॥
रतन सेन या वंश आप संभ्रमहिं बढ़ायो।
अलादीन के दांत तोड़ि निज धर्म बचायो॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो।
ठानि जहरव्रत नारि धर्म कुलधर्म रखायो॥
अजयसिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो॥
सोइ जो लावै मुंज सीस युवराज हमारो।
सब पुत्रन प्रति यह आज्ञा महराज प्रचारो॥
निज पितु शत्रु हराइ मूंज सिर हम्मिर काढे।
बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटे॥
मुहमद शा करि कैद चितौरहिं फैरि बसायो।
यवन दर्प दरि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो॥
जहाजपुर दक्षिण लों जय करि राज बढ़ायो।

२

यवन सीस पग धारि बैर अपनो पलटायो ॥
लक्खो राणा सीस राजलक्ष्मी तब आई ।
लक्ष्मी चारों ओर मनहुं छाई छितराई ॥
किए पहाड़ी प्रान्त आप बस रत्नखानि सह ।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल मह ॥
किले महल बहु बने राज श्री चहुँ दिसि राजे ।
फीके शत्रुहिं किए अटल सिर छत्र बिराजे ॥
प्रबल पराक्रम साथ पौत्र कुंभा जब बैठे ।
शत्रु हृदय दलमले क्रूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल-मुकुट कहाइ नाम थिर जग में थापे ।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भय सों कांपे ॥
योही कुल रानी मीरा जग कीरति छाई ।
गिरिधरलाल रिझाइ बहुत विधि लाड़ लड़ाई ॥
राणा सांगा कीरति जग में को नहि जानै ।
जाके असि को तेज शत्रु जिय सहजहिं मानै ।
बाबर को बावरो कियो रण स्वाद चखाई ।
कितेक राजा रावल रावत सिरहिं नवाई ॥
रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःसंक सदाई ।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई ।
निज भुज बल नहिं घुसन दिए यवनन रजधानी ।
जिनके यश की सदा जगत में चली कहानी ॥
बिगत निसा भए उदय भानु खल लंपट लाजे ।
चहुं दिसि छयो प्रताप सिंह लखि गीदड़ भाजे ॥
अब सोचन की बात कौन है शूर बीर गन ।
उठो उठो कटि कसो याद करि निज पवित्र पन ॥
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय ।

जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय ॥
जबलौं जीवन देह तबहि लौं जग के झंझट।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महा भट ॥
जब लौं घट में प्रान न तवलौं छूअन दीजै।
यवन सैन मेवारहिं लखि लखि हाथनि मीजै ॥
पिंजर बद्ध बिहंगम से परवस जीवन धिक।
जब लौं जीवन रहै दुःख नहिं होइ मानसिक ॥
अब विलंब को काज नहीं असि बेग उठावहु।
निज प्रताप अब हे प्रताप अरिगनहिं देखावहु ॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जौ दृढ़व्रत धारो।
तातें हे नरव्याघ्र बेगि रन घोष प्रचारो ॥
आगो पीछो त्यागि होहु सब एक प्रेममय ॥
यह निहचय जिय धरौ धर्म जित जय तित निसचय ॥

प्रतापसिंह। (आवेश से खड़े होकर)

सुनो सुनो मेरे वीर सरदारो—

जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाइ दासता श्रृङ्खल तोड़ौं ॥
जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तौ जीवन।
नहिं तातें शत गुणित मरन रन मैं जस पीवन ॥
जौ पै निज शत्रुहिं मारि कै यह परतिज्ञा राखिहौं।
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं ॥

(पटाक्षेप)

———

द्वितीय गर्भाङ्क ।

(स्थान—उदयपुर का किला ।)

(सैनिक गण ।)

१ सैनिक । क्यों भाई, कुछ तुमने भी सुना ?

२ सैनिक । कौन बात ?

१ सैनिक । सुना है चित्तौर उद्धार के हेतु दर्बार तयारी कर रहे हैं ।

२ सैनिक । उड़ती उड़ती खबर तो हमने भी सुनी है, भगवान श्री हजूर को सुमति दे कि जल्दी ही उधर की ओर रुख़ करें । भाई वीरसिंह, अब तो सही नहीं जाती ।

वीरसिंह । हम लोग तो उसी समय नहीं हटते थे. पर क्या करें बड़े दबार ने माना नहीं, नहीं तो चित्तौर ले लेना इन लोगों की मालूम हो जाता ।

१ सैनिक । इसमें कौन संदेह था, देखो एक बीरवर जयमल अड़ गए तो दो घड़ी लग गई और जान पड़ा कि चित्तौर लेना कैसी टेढ़ी खीर है ।

वीरसिंह । जयमल और पुत्त ने संसार में अपनी कैसी कीर्ति छोड़ी ! हाय ! हम अभागे थे जो उस समय काम न आए ।

१ सैनिक । भाई मालिक को भी अकेला छोड़ना उचित न था करते क्या ? अच्छा, क्या चिन्ता है, प्रतापसिंह के प्रताप का अब उदय हुआ ही चाहता है, अब ये कहां टिकते हैं । जैसे भगवान सूर्यनारायण के उदय होते ही चोर लंपट अन्तर्धान हो जाते हैं, देखना वैसे ही उनका उदय यवनों को नाश कर देगा ।

वीरसिंह। हां हां और क्या, अब वह समय पहुँचा ही चाहता है, सब लोग दृढ़ रहो, देखें कौन कहां तक वीरता दिखाता है।

१ सैनिक। अजी हम सब तयार हैं, प्राण रहते तो कोई हटते ही नहीं पर सिर कटने पर भी धड़ दो एक को लेही मरेगा।

वीरसिंह। देखो देखो श्री हजूर की सवारी इधर ही को आखेट को पधारती है। आओ हम लोग ऐसे गीत गावैं जिसमें और भी हमारे मालिक का उत्साह बढ़े।

(सब सैनिक गाते हैं)

तजि सोच उठौ सब बीर बांधि दृढ़ आसा।
अब भयो भानुकूल भानु प्रताप प्रकासा॥
दुखमय परवस की रैन अहो सब बीती।
दिन गए यवनगन जो चितौर गढ़ जीती॥
चलि बेग लगाओ मसि उनके मुख चीती।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती॥
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज विकासा।
अब भयो भानुकूल भानु प्रताप प्रकासा॥ १॥

चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं॥
आनँद सो सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं।
स्वाधीन दिवस सब सुख सो सदा बितावैं॥
निर्द्वन्द होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ २॥

अपनी अपनी करतूति सबै दिखराओ।
लरि लरि अरि सैनहिं इत तैं तुरत भगाओ॥
जड़ सौं भारत तैं इनके नाम मिटाओ।
फिर आर्य सुयस की नदी पवित्र बहाओ॥
करि कैं अब विजय मिटाओ जग परिहासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ ३॥

परसन्न होइ परताप जबहिं प्रगटायो।
तौ विजय महूरत अब तुम्हरे दिसि आयो॥
चूकौ जिनि समयो ऐसो सुन्दर पायो।
तुम्हरे सिर राजत छत्र प्रताप सुहायो॥
उत्साह सहित उठि कीजै शत्रु विनासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ ४॥

(सभों का प्रस्थान)

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान—उदयपुर—अन्तःपुर)

(महाराणा विराजमान हैं)

महाराणा। कैसा कठिन समय उपस्थित हुआ है? जब से यहां मुसलमानों के क़दम आए सारा देश उजाड़ हो गया ख़जाना खाली पड़ा है, खेत ऊसर हो रहे हैं, सारी श्री जाती रही, जिस वंश की उन्नत ध्वजा सदा आकाश भेद कर उड़ा करती थी, हाय! आज वह वंश भी अपनी आंखों से चित्तौरगढ़ में विजातीय शत्रुओं का निवास चुप चाप सहन कर रहा है। पितृचरण ने न जाने क्या और किस जीवन के लाभ से जीते जी चित्तौर छोड़

दिया और अपने शरीर में प्राण रहते भी शत्रुओं को प्रवेश करने का अवसर दिया। धन्य है वीरवर जयमल और पुत्त को कि जिन्होंने उस डूबती हुई मेवाड़ की कीर्ति का कुछ तो ठहरने का ठिकाना किया। आह! कैसी वीरता साहस के साथ प्रवल पराक्रमी शत्रुओं का गति-रोध किया था। क्या उनकी अक्षय कीर्ति कभी लोप हो सकती है? ऐसे पुरुषरत्न क्या हमें सहायक मिलेंगे? जो चार वीर ऐसे साहसी हमें मिलें तो हम प्रतिज्ञापूर्वक मेवाड़ ही से क्या सारे भारत से इनको निकाल दें। पर क्या हुआ जो हमारे राज्य में इन्होंने प्रवेश किया है, हमारे हृदय पर तो हमारा पूरा अधिकार है? लाख लाख कठिनाइयों के पहाड़ गतिरोध करने को क्यों न खड़े हों परन्तु प्रताप के वेग को कौन रोक सकता है? यद्यपि इस समय राजस्थान के सब राजाओं ने स्वार्थ के वश होकर आत्मविस्मरण कर दिया है, इन विधर्मी शत्रुओं के साथ सम्बन्ध कर लिया है और यहां तक कि हमारे ही छोटे भाई ने अकबर से मित्रता कर ली है, परन्तु क्या इस से हम कभी हताश हो सकते हैं? कभी नहीं, यदि इन कुलांगारों को अपना प्रताप न दिखाया और इनकी इस नीचता के लिये लज्जित न किया तो मेर नाम प्रतापसिंह नहीं। अपने पिता के लिये हम बहुत शीघ्र रामगङ्गा में स्नान करके प्रायश्चित्त करेंगे हमारे हृदय में शक्ति चाहिए, हमारे हाथ में बल चाहिए फिर हमारे आगे कौन ठहर सकता है? देखो, हमारे वंश के मूल पुरुषों ने कैसे पराक्रम और साहस के कर्म किए हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने अपने ही

बाहुबल से वानर और भालुओं की निमित्त मात्र सैन्य बना कर रावण ऐसे प्रबल शत्रु का विनाश किया था, बाप्पा रावल ने खुरासान तक विदेश में जाकर अपनी ध्वजा फहराई थी, खुमान ने काबुलियों का सारा कट्टरपन भुला दिया था, योंही बराबर एक से एक वीर होते ही गए, क्या उनके पवित्र कुल में जन्म धारण करके हम इस कुल को कलंकित करें? कभी नहीं, और फिर जैसी कठिनाइयां उन्हें झेलनी पड़ी थीं उनसे तो कहीं कम हमारे आगे हैं। हम तो अपने घर अपने स्वदेश प्रेमी वीरों के बीच में बैठे हैं। इन भुनगों को दूर करना हमारे लिये क्या बड़ा भारी काम है। भगवान् इस समय सानुकूल प्रतीत होते हैं। जिधर देखते हैं उत्साह दिखाई देता है, जिससे सुनते हैं उमङ्ग भरी बातें कान में आती हैं। क्या ऐसा अवसर चूकने योग्य है? कभी नहीं, और फिर ऐसे पराधीन निर्जीव जीवन से तो मरना ही उत्तम! या तो चित्रकूट गढ़ की ऊंची शिखर पर सिसोदिया कुल की पवित्र ध्वजा फहराती देख कर अपनी छाती ठंढी करेंगे अथवा अचल कीर्ति संसार में छोड़ कर अक्षय धाम का सिंहासन अधिकार करेंगे [आवेश में] प्रताप सिंह! तुझे अपनी जननी के दूध की सौगन्ध है जो प्राण रहते कभी इन म्लेच्छों के निकालने की चेष्टा में निरस्त हो। जो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर सकें तौ तौ वीर माता का दूध पीना सफल है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार! अकबर अपने को बड़ा प्रतापी, बड़ा चतुर, बड़ा वीर लगाता है, दक्खिन का राज्याधिकार करके उसे बड़ा गर्व हुआ है, राजपुताने के कुलांगारों को अपना

साला सुसरा बना कर बड़ा फूला है. अपना राज्य अटल समझता है। परन्तु प्रताप! तेरा नाम तभी है जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण तल में मर्दन करे। कुछ चिन्ता नहीं, जो इसका दर्प चूर्ण न किया तो संसार में अपना मुँह न दिखाऊँगा (नेपथ्य की ओर देख कर) अच्छे अवसर पर राज्यमहिषी आ रही हैं। इनके मन का थाह तो लें। देखें ये कितने पानी हैं।

(राज्यमहिषी का प्रवेश।)

रानी। आर्यपुत्र की जय हो! क्या मैं सुन सकती हूँ आज आप की चिन्ता का क्या कारण है?

महाराणा। भला तुमसे न कहेंगे तो किस से कहेंगे? हम तो अभी तुम्हें बुलाने ही वाले थे, अच्छे अवसर पर तुम्हारा आना हुआ। हम इस समय यहाँ सोच रहे थे कि इस कठिनाई के समय में हमें क्या करना उचित है? क्या हम भी जयपुर की तरह अपनी प्राण से भी प्यारी बेटी को यवनराज की भेंट करके अपना झूठा साज बाज बढ़ावें और अपने बड़ों की कीर्त्ति को मिट्टी में मिलावें?

रानी। महाराज कभी नहीं। आपको ऐसा कभी विचारना ही न चाहिए। ऐसा विचार भी करने से प्रायश्चित्त लगाता है। बिचारी भोली भाली हिन्दुओं का लड़कियां अपना भला बुरा क्या जाने, उनका तो सुख दुख सब मां बाप के हाथ हैं, जो वे किसी लोभ में पड़कर वा प्राण के डर से उनका सर्वनाश करते हैं तो न केवल अपनी कुल-मर्यादा को उल्लंघन करके संसार में अपयश के भागी होते हैं वरन् उन्हें परमेश्वर के यहां भी उत्तरदाता होना पड़ता है। मैं तो कभी अपनी प्यारी बेटी को म्लेच्छ

कुलकलंक की हवा भी न लगने दूँगी चाहे आप भी इस में बुरा मानें तो मानें और फिर महाराज यह जीवन कितने दिन का! इस नाशमान शरीर की रक्षा के लिये अपने कुल को कलङ्कित करना कभी उचित है? मैं तो स्त्री हूँ, मेरी तो छोटी बुद्धि है पर मेरी दो ही इच्छाएँ हैं या तो इन विजातीय शत्रुओं को मार कर महाराज के साथ चित्तौर राज्य सिंहासन की गौरव के साथ अधि-कारिणी बनूँ अथवा वीरदर्प से गिरे हुए महाराज के पवित्र शरीर को अपनी गोद में लेकर हँसते २ भारतरम-णियों का मुख उज्वल करके पतिलोक में आप से मिलूं।

महाराणा। साधु, महाभागे, साधु! प्रतापसिंह की अर्द्धांगिनी होने का अधिकार तुम्हारे अतिरिक्त किस को है? तुम निश्चय रक्खो जब तक इस शरीर में प्राण हैं हम कभी इन म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार न करेंगे।

(धूलधूसरित राजकुमार का प्रवेश।)

राजकुमार। (रानी की पीठ पर लपट कर तुतलाते हुए) मां। दलवाल जवनों का छिकार खेलने जांयगे।

रानी। (मुख चुम कर) हाँ, हाँ बेटा तुम भी ज़रूर जाना अच्छा बताओ तो हमारे लिये क्या लाओगे?

राजकुमार। भाई अमतो छहजादा को मालेंगे उछके गले की हीले की कंथी लेआवेंगे छो तुम को देंगे औल उछकी तलवाल दलवाल को देंगे और तोपी हम लेंगे?

महाराणा। भला मुसलमान की जूठी टोपी तुम पहिरोगे?

राजकुमार। काहे तुमी न कहते थे कि लाजा का मुकुट जूथा नहीं होता?

(महाराज गोद में लेकर मुख चूमते हैं।) (नेपथ्य में गान)

सबै मिलि सावधान अब होय। उदय होत भारत नभ सूरज तिमिर यवन कुल खोय॥ अपुने अपुने काज संभारहु तजि आलस सब कोय। करहु पवित्र शत्रु यवनन के रुधिर भूमि को धोय॥

महाराणा। ओह ! बड़ी देर हो गई। दरबार का समय हो गया। सुना है मानसिंह दक्षिण विजय करके आते हैं, उदयपुर भी रहने वाले हैं, इनके आतिथ्य का भार मन्त्री को सौंपा है क्योंकि हम तो उस म्लेच्छप्राय हिन्दू कुलकलंक का मुख नहीं देखना चाहते [प्रस्थान]

इति प्रथम अंक।

द्वितीय अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

[स्थान दिल्ली, ज़नाना मीना बज़ार, एक से एक चढ़ बढ़ कर तैयारी की दूकानें और उन पर रूपवती स्त्रियां सौदा बेचती हुईं। बड़े बड़े घरों की बहू बेटियां सखियों के साथ घूम रही हैं। अकबर एक ऊंची खिड़की से चिक की ओट में दिखाई देता है।]

[पृथ्वीराज * की रानी का प्रवेश और एक वृद्धा का उसके पास आगमन]

वृद्धा। बेटी तू किसी बड़े घराने की जान पड़ती है। जो तुझे बाज़ार की सैर करने की ख्वाहिश है तो आ मैं तुझे सैर करा दूं, क्योंकि बहुत बड़ा बाज़ार है तू नाहक फिरैगी।

रानी। आप कौन हैं ?

वृद्धा। ऐं, मैं इसी शहर की रहने वाली हूं, कोई लंगी लुच्ची नहीं हूं। तुम डरो मत, तुम से मैं कुछ सवाल न करूंगी।

रानी। (मन में) जान पड़ता है इसी कुटनी के द्वारा अकबर अपनी घृणित इच्छा को चरितार्थ करता है। शकुन तो अच्छा मिला। आज यदि भगवान की कृपा होगी तो इन सभों को इसका मज़ा चखाऊंगी।

वृद्धा। [चटक मटक कर] ऐं बलैया लूं; बेटी तू किस सोच में पड़ी है. मैं तुझे ऐसी ऐसी सैर कराऊंगी कि तू खुश हो जायगी।

---

* महाराज बीकानेर का भाई और अकबर का दरबारी सरदार।

रानी। नहीं नहीं और कुछ नहीं सोचती थी–आप की भल-मनसाहत सोच रही थी (मन में) भला नानी देखें आज तू मुझे सैर कराती है या मैं तेरे बाप के साथ तुझे जहन्नुम की सैर कराती हूं।

वृद्धा। यह आप की मेहरबानी है, मैं किस काबिल हूं (मनमें) वह मारा–अब कहां जाती है। आज का शिकार तो बहुत ही नफ़ीस है। आज भारी गठरी हाथ आएगी (प्रगट) अच्छा हुजूर, अब इधर मुलाहिज़ा फ़र्मावें, यह जौहरिन की दूकान है, कैसे कैसे बेबहा जवाहिरात रौनक़बख्श हैं कि जिनकी चमक से सारा बाज़ार खिल रहा है (हँस कर जौहरिन की ओर देख कर) और बी जौहरिन ने तो अपने याकूत लब गौहर दन्दाँ की आब के आगे सब को मात कर रक्खा है।

जौहरिन। (भौंह टेढ़ी करके) चल मुई बूढ़ी खब्बीस, तुझे हरवक्त दिल्लगी सूझती है (रानी से) हुजूर देखें यह याकूत की अंगुशतरी कैसी खूबसूरत है। यह हुजूर ही के क़ाबिल है (रानी अंगूठी लेकर देखती है।)

एक सखी। [वृद्धा से] क्यों बूआ, अब भी जो तुम्हे ये ज़ेवरात पहिरा दिए जांय तो क्या किसी से कम जंचो?

वृद्धा। [प्रसन्न होकर] अब क्या बेटी, जब हमारा ज़माना था तब था अब तो बूढ़े मुँह मुँहासे।

जौहरिन। नहीं नहीं ऐसा क्यों जी छोटा करती हो अब भी तुम्हारे क़दरदान—

वृद्धा। [रानी से] ऐ हुजूर, जो लेना देना हो ले कर चलिए अभी बहुत बाक़ी है नावक्त हो जायगा।

रानी । ठीक है [एक सखी से] यह अंगूठी लेलो ।
[अंगूठी का दाम देकर सब आगे बढ़ती हैं]

वृद्धा । देखिए ये बजाज़िन की दूकान है और इस मनिहारिन को इधर मुलाहिज़ा फ़र्माइए । मुसौवरिन की दूकान पर कैसी कैसी खूबसूरत तस्वीरें आवेज़ां हैं, अहाहाहा! यह देखिए हमारे बादशाह सलामत की तस्वीर है ओ हो हो ! कैसा शबाब है ?
(रानी के मुँह की ओर देखती है ।)

रानी । (घृणा नाट्य करती हुई मन ही मन) भला चढ़ो देखा जायगा तेरा यह शबाब (प्रकाश) यह सुन्दर चित्र किस स्त्री का है ?

मुसौ० । हुजूर यह बादशाह की बेगम जोधाबाई की तस्वीर है।

रानी । यह वही कुलकलंकिनी है ?

वृद्धा । [मन में] घबराइये न । अभी आपकी भी क़लई खुली जाती है । [प्रकाश] ऐ हुजूर, वक़्त नावक़्त होता है अभी हुज़ूर को बड़ी बड़ी सैर करानी है एक एक दूकान पर इतनी देर करने से कैसे काम चलेगा ?

मुसौ० । मर राँड़ मुँहजली, तेरे मारे किसी का भला काहे को होने पाएगा ।

रानी । (हंसकर एक चित्र मोल लेकर आगे बढ़ती है ।)
(वृद्धा रानी को दिखाते ही दिखाते नेपथ्य की ओर चली जाती है ।) (पटाक्षेप ।)

द्वितीय गर्भाङ्क ।

(स्थान दिल्ली बादशाही महल के भीतर एक अंधेरा रास्ता; पृथ्वीराज की रानी की सखियां घबराई हुई ।)

१ सखी । यह क्या अन्धेर हुआ, महारानी कहां चली गई

कुछ पता नहीं लगता । यह ठग की बुड्ढी न जाने किधर महारानी को लेकर गुम हो गई । हाय । अब क्या करें ?

२ सखी । हम सब तो बेमौत मारी गईं । अब महाराज को चल कर कौन मुँह दिखाएंगी ?

३ सखी । अरे अभी तो हम लोगों के साथ थीं, इतने ही में वह निगोड़ी महारानी को लेकर किधर समा गई ?

४ सखी । हा ! हमारी सखी की कौन जाने क्या दशा होती होगी । हम लोगों ने साथ ही रह कर क्या किया ?

५ सखी । महाराज जब सुनेंगे उनकी क्या दशा होगी ? हम में से एक को भी जीता न छोड़ेंगे ।

(व्याकुल हो कर इधर उधर घूमती हैं ।)

(एक ख़वासिन का प्रवेस ।)

ख़वासिन । तुम सभों ने क्या शोर मचा रक्खा है ? जानती नहीं हो यह शाही महल है यहाँ अदब से रहना चाहिए ?

१ सखी । हम सब अदब क्या जानें । इस समय तो हम लोगों का जी ठिकाने नहीं है । हमारी रानी का पता नहीं लगता बहिन तुम जानती हो तो बताओ, बड़ा जस मानेंगी ।

ख़वासिन । (मुस्करा कर) तुम्हारी रानी ? तुम्हारी रानी इस वक्त हमारी रानी बनी है । तुम लोग घबराओ मत ।

२ सखी । चल लुच्ची तुझे इस समय भी हँसी सूझती है ? सच सच बता हमारी रानी कहां है ?

ख़वासिन । (हँसकर और चमक कर) ऐं तुम मानती ही नहीं हो तो हम क्या कहें ? अच्छा अभी दम भर में देखना तुम्हारी रानी मालामाल यहीं पहुंचती हैं । यह

तो शाही महल है यहां का दस्तूर है कि ख़ाली आवे और भरी जावे (व्यङ्गपूर्वक हास्य)

सखियां । (रूखी हो कर) चल निगोड़ी, तेरा सत्यानाश हो । तेरी जीभ निकाल लें ।

ख़वासिन । (हँस कर) तो तुम सब क्यों रश्क खाती हो, चलो न तुम सभों का भी बंदोबस्त हम किये देते हैं। यह शाही महल है यहां कमी क्या है ?

(सब सखियां उसे पकड़ने को दौड़ती हैं और वह हँसती हुई भागती है।) (पटपरिवर्तन ।)

तृतीय गर्भाङ्क ।

(स्थान बादशाही महल में एक सुसज्जित कमरा।)

(अकबर उत्कण्ठित भाव से इधर उधर घूमता और द्वार की ओर देखता है)

(नेपथ्य में गान)

मधुकर काहे को अकुलात। खिलन चहत पंकज की कलियां अब न दूर परभात। यह पराग तेरेही बांटे क्यों नाहक ललचात। छुन ही छकि प्रेम सुधा तू डोलेगो इतरात।

अकबर। हाय! मैं इतना बड़ा शाहनशाह, मेरे यहां दुनियां के ऐशो इशरत के सामान मुहय्या, मगर मेरे दिल को एक दम भी राहत नहीं, शबोरोज़ फ़िक्र, लहज़ः बल-हज़ः तरद्दुदात, रोज़ नई ख्वाहिशें, रोज़ नए हौसिले और हाय! इन गुलबदनों की चाह ने तो मुझे पागल ही बना दिया। कितनी देर से कितने कामों का हर्ज करके बावला सा यहां घूम रहा हूँ मगर अब तक सिवाय हसरत के कुछ हाथ न आया (नेपथ्य में पैर की

आहट सुन कर, मालूम होता है बी नसीरन हमारे गुलेमुराद को लिये आ रही हैं। किसी ने खूब कहा है—

"वादए वस्ल चूँ शवद नज़दीक।
आतिशे शौक़ तेज़तर गर्दद॥"

(द्वार खुल जाता है और वृद्धा का रानी का हाथ पकड़ कर खींचते हुए प्रवेश)

वृद्धा। उम्रो दौलत की ख़ैर, तरक्क़िए जाहो हशमत, मुरादें भरपूर-लौंडी दुआगो अब रुख़सत की तलबगार है।

रानी। (वृद्धा को पकड़ कर) क्यों री हरामज़ादी, यही सैर कराने लाई थी, अब चली कहाँ ?

वृद्धा। (हाथ छुड़ाकर मुस्कराती हुई) बेटा, दम भर बाद इसी सैर को फिर जनम भर तरसोगी।

(रानी वृद्धा का एक लात मारती है; वह गिर पड़ती है और उठ कर कमर पकड़े गिरती पड़ती बड़बड़ करती जाती है।)

अकबर। (रानी के पास आकर) प्यारी, इधर आओ, ज़रा आराम फर्माओ, किस सोच में हो, देखो यह वह शाहनशाहे दिहली जिसकी निगाह की कोर दुनियां के बादशाह देखते रहते हैं आज तुम्हारे क़दमों की गुलामी की ख्वाहिश करता हाज़िर है।

रानी। (मुँह फेर और रूखे स्वर से) देख अकबर, तू बहुत बड़े सिंहासन पर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मों से इस राज्य-सिंहासन को कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुँचा।

अकबर। (रानी का हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटक कर हट जाती है।) ऐ जानेजां, इस नीमजां को अब

न सताओ, तुम्हारे इस जांनिसार ने इसी वक़्त तुम्हारी नाज़नीं अदा पर जो कवित्त तसनीफ़ किया है उसको भी ज़रा सुन लो—

"शाह अकब्बर बाल की बांह अचिन्त गही चल भीतर भौने । सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे को भ्रम पावत गौने । चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने। यों छबि नैन छबीले के छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने।

रानी । (क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार ! मैं राजपूत बाला हूं, मेरा अङ्ग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूंगी ।

अकबर । (हाथ जोड़ कर) नहीं, नहीं, खफ़ा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशक़ीमत चम्पाकली, यह बेवहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नज़र हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा ग़ुलाम है। आज अपनी ज़रा सी मेहर की निगाह से बादशाहत को बिला क़ीमत ख़रीद सकती हो।

रानी । (लाल लाल आंखें निकाल कर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा ? क्या तेरा काल ही तेरे सिर नाच रहा है ? क्या आज मुझी को नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा ? सुन, मैं तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूं और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व रक्षार्थ मैं तयार हो कर आई हूं । तुझ से फिर भी यही कहती हूं कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख ।

(अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपट कर अकबर को धरती पर पटक कर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई)

रानी। ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहीं निबटेरा किए देती हूं और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलकी करती हूं। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)

अकबर। (आर्त्तस्वर से) तौबा-तौबा-मैं हाथ जोड़ता हूं मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी। कह, क्या कहता है।

अकबर। मैं अपने गुनाहों के लिये सख़्त नादिम हूआ, मेरा कुसूर मुआफ़ करो, मेरी जां-बख़्शी करो, मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया, मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेक चलनी को कभी ख़्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रक़ीक़ दिल तमः के फन्दे से फांसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बख़शिए। लिल्लाह मुझे बख़शिए। अब कभी किसी के साथ ऐसा गुनाह सरज़द न होगा।

रानी। मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है; रे कुलांगार, उन्हीं की बहू बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती! धिक्कार है तुझको!

अकबर। आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दें

वजा है. मगर याद रक्खें, यह हुमायूँ का बेटा अकबर जब कि खुदायपाक के नाम पर आज अहद करता है अगर कभी फिर उससे यह गुनाह हुआ तो इस दुनियां में मुँह न दिखायगा। अब मुझे ज़्यादा न शर्माएं और मेरी जां-बख़्शी करें।

रानी। देख, तू बड़ा बादशाह है। मेरे स्वामी ने तेरा नमक खाया है इसलिए तुझे आज छोड़ देती हूं परन्तु समझ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतों के बाहुबल से है। यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुनने में आयगी, सारे राजपूताने में तेरे इस भेद को खोल दूंगी और एक दिन में राजपूत मात्र को तेरा बैरी बनाऊँगी।

(अकबर को छोड़ देती है)

अकबर। (रानी के पैरों पर गिर कर) मैं आपके इहसान से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता। आपने न सिर्फ आज मेरी जाँ बख़्शी की बल्कि बहुत बड़े गुनाह से बचाया। मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ यह भी वादा फ़र्माया जाय कि यह भेद किसीसे ज़ाहिर न किया जायगा और मेरा गुनाह मुआफ़ फ़र्माया जाय।

रानी। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि यह भेद किसी से न प्रकाश करूँगी। परन्तु मैं गुनाह मुआफ़ करनेवाली कौन? उस करुणामय जगतपिता को सच्चे जी से क्षमा प्रार्थना कर, वही क्षमा करेगा।

(अकबर घुटने के बल बैठ कर भगवान से क्षमा प्रार्थना करता है। रानी कटार लिए खड़ी है।)

अकबर—

रहा मैं गुमराह ज़िन्दगी भर इलाही तौबा इलाही तौबा।

चला न नेकी की हाय राह पर इलाही तौबा इलाही तौबा।
दी इस लिये मुझको बादशाही कि तेरे बन्दों को पहुंचे राहत।
वले किया मैंने ज़ुल्म इन पर इलाही तौबा इलाही तौबा।
रहा लगा नफ़्स पर्वरी में न दिल दिया दाद गुस्तरी में।
पड़े मेरे अक़्ल पर ये पत्थर इलाही तौबा इलाही तौबा।
बहाना ज़ालिमकुशी का करके किए बहुत मुल्क फ़तह हमने।
वले किए ज़ौर उनपः बदतर इलाही तौबा इलाही तौबा।
भला हो इस हूर पारसा का उठाया आंखों से जिसने परदा।
हैं ज़िश्त एमाल मेरे एकसर इलाही तौबा इलाही तौबा।
हुआ है दामन गुनाह यों तर कि गर निचुड़ जाय वह ज़मीं पर
तो डूब जाऊं मैं उसमें ता सर इलाही तौबा इलाही तौबा।
फ़क़त तेरे बख़्शिशो करम का है एक भरोसा मुझे ख़ुदाया
नहीं कोई और अब है यावर इलाही तौबा इलाही तौबा।
नज़र जो किर्दार पर मेरे की तो हो चुकी शक्ल मुख़लिसी की
निगाह अपनी करम पः तू कर इलाही तौबा इलाही तौबा। *

(धीरे धीरे पटाक्षेप।)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान दिल्ली शाही महल का एक कमरा।)

(अकबर का चिन्तित भाव से प्रवेश।)

अकबर। हाय, मैं इतने दिनों तक किस तारीकी में था, इतनी उम्र किस गुनहगारी में बिताई, इलाही, इस अपने बंदे पर करम कर अब इस दिले बेचैन को सब्र अता कर।

---

* यह ग़ज़ल मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) की सहायता से बनी है।

खुदाया ! "मवज न कर मेरे जुर्मों गुनाह बेहद का ।
इलाहि तुझको गुफ़ूरुल रहीम कहते हैं ।
कहीं कहैं न उदू देख कर मुझे मुहताज ।
यह उनके बन्दे हैं जिनको करीम कहते हैं ॥"

अहा ! दरहक़ीक़त उसके बराबर कौन करीम है । अपने बन्दे को गुमराह देख कर आज इस पाकदामन औरत के ज़रिए से कैसी नसीहत दी । उफ़–बला की तेज़ी, ग़ज़ब की दिलेरी, कैसा खुदाई नूर था ! क्या यह वाक़िआ कभी भूलने का है ? हर्गिज़ नहीं । अगर मेरी यह हरकत इसी तरह जारी रहती और यह ख़बर बहादुर राजपूतों के कान तक पहुँचती, ज़रूर था कि हमारी सल्तनत पर ज़वाल आता । आहा ! उस जनावेबारी की दर्गाह में किस ज़ुबां से शुक्रिया अदा करूं ? उसकी बेहद शफ़ाक़त का किस मुंह से बयां करूँ । आहा ! कैसे मुसीबत के वक्त में इस नाचीज की पैदायश हुई ! ओफ़ ! उस संगदिल चचा की सख़्ती क्या कभी भूल सकती है ! ओफ़ ! उस वक्त खुदायपाक ने कैसी मुश्किलात आसान कीं ! फिर से यह तख़्तो ताज़ बख़्शा, ख़ानबाबा की बगावत जिस वक्त याद आती है, दिल कांप उठता है, मगर वाह रे मुश्किलकुशा, अपने इस बच्चे की बात उस वक्त कैसी रक्खी ! (कुछ ठहर कर) अहा हा, हिंदू मुसल्मानों के रिश्तेदारी की बुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है । अगर इसमें पूरे तौर पर कामयाबी हुई तो ख़ान्दान तैमूरिया कभी हिन्दोस्तान से नहीं हट सकता । मगर वाह रे भगवानदास, तेरे बराबर दूरन्देश कोई काहे को पैदा होगा ! हमारी पूरी चाल न जमने पाई । जो कहीं हमारे घर की

लड़कियाँ हिन्दुओं के घर जातीं तो सब काम बन जाता। फिर तो इन्हें मुसलमान बनाने में कुछ भी देर न थी। मगर उस दानिशमन्द ने इस चाल को ताड़ लिया। अच्छा, कुछ मुज़ायक़ा नहीं, जाते कहां हैं। जो चाल चली है उसीकी तरक्की होने का नतीजा वह भी होगा। (कुछ सोच कर) यह हिन्दुओं का मुल्क है। यहां हिन्दू ही बसते हैं, इनकी बहादुरी का मुक़ाबिला दुनियां में कोई कौम नहीं कर सकती, हालां कि इस वक़्त इन पर ज़वाल है मगर कब खुदा ताला किस को उरूज देगा इसका कौन ठिकाना? इसलिये जब तक इनके दिल से मुसल्मानों से नफ़रत न दूर की जावेगी, जब तक इनके दिल में बिरादराना मुहब्बत न पैदा की जायगी तब तक मुमकिन नहीं कि मुसल्मानी सल्तनत को क़याम हो और यह तब तक मुमकिन नहीं जब तक कि मज़हबी जोश, मज़हबी ख़ियालात इनके मज़बूत हैं। मगर क्या बज़ोर शमशेर इनका मजहबी ख़ियाल तबदील हो सकता है? हर्गिज़ नहीं—बल्कि ख़ौफ है कहीं उल्टी आग न भभक उठे। इसको मिटाने, इनको मुसल्मान बनाने की अगर दुनियां में कोई तदबीर है तो यही कि इनसे नाता रिश्ता बढ़ा कर इनके दिल से अपनी तरफ़ से नफ़रत दूर करना, इनके मज़हब की तारीफ़ करना, इनकी मज़हबी तक़रीबों में शिरकत करके इनकी निगाह में ख़ुद हिन्दू बन कर कुल परहेज़ों को दफ़ा करना। हाय, हमारे नाआक़बतअन्देश मुसल्मान भाई हमारी इस दूरन्देशी पर तो ख़ियाल करते नहीं और हम्हीं से नाख़ुश होते हैं। हाँ—मगर मैं अपनी इस चाल को नहीं तबदील कर सकता। अकबर! अगर

तुझ पर खुदा की मेहरबानी हो और पूरी उम्र अता हो, तो तू साबित करके दिखला कि तैने मुसल्मानी सल्तनत की बेख़ हिन्द में किस क़दर मज़बूती के साथ गाड़ी है और इन काफ़िरों के मज़हब में दीन इसलामिया की रू किस तरह मह्व कर दी है।

(एकाएक राजा टोडरमल का प्रवेश)

अकबर। (मन में) यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ; जो कहीं इन्होंने हमारी गुफ़्तगू सुनी होगी तो बड़ा बुरा हुआ (प्रकाश) आइए राजा साहब, आज इस वक्त आप कहां ?

टोडर। खुदावन्द, फ़िदवी एक ज़रूरी अम्र में गुज़ारिश करने की ग़रज़ से हाज़िर हुआ है।

अकबर। फ़रमाइए।

टोडर। जहांपनाह हुजूर के साया में रऐयत निहायत अमनो अमान से हैं और शेर व बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं, मगर इसे रामराज्य कहें तो भी मुबालिग़ा न होगा, मगर अफ़सोस की बात है कि मुसलमान भाइयों के दिल से तअस्सुब रफ़ा नहीं होता और वे रोज़ नए फ़िसाद उठाते हैं। सुनने में आया है कि खिलाफ़ हुक्म बन्दगानेआली आज फिर कुछ शूरा पेश है जिस से लोग खौफ़ज़दा हो रहे हैं।

अकबर। राजा साहब, मैं इन अपने भाइयों की नादानी से सख़्त परेशान हूँ। आप देखिये, वालिदा माजिदा की वफ़ात में अगर मैंने बाल बनवाए तो क्या बेजा किया ? मगर इन सभों ने कैसा वावैला मचाया। चाहे कोई खुश हो या नाखुश मैं तो हिन्दुओं के मज़हब का क़ायल हूँ। जहां तक मैं हिन्दू वेदान्त शास्त्र में डूबता

हूँ एक अजीब लुत्फ़ हासिल होता है। मुझे तो अपने क़ौम का मुतलक़ एतबार व भरोसा नहीं। मेरा तो दारोमदार आप ही जैसे रुक़नेसलतनत पर है। आप लोगों को तशफ्फ़ी दें, मैं अभी आकर इन्तिज़ाम करता हूँ। अकबर का हुक्म किस की मजाल है जो टाल सके।

टोडर। ऐ शहनशाहे आलम, आप इतमीनान रक्खें, हिन्दू प्रजा का सर हुजूरेआली के क़दमों में हमेशः हाज़िर है और आलीजाह, अपने बादशाह से बग़ावत करना तो हिन्दू क़ौम ने सीखा ही नहीं है। तावेदार इस वक्त रुख़सत हो!

अकबर। हां आप चलें—मैं भी अभी आता हूँ (मन में) शुक्र है इन्होंने कुछ न सुना। अकबर का दिली इन्दिया किसी को मालूम होना दिल्लगी नहीं है।

(टोडरमल का प्रस्थान।)

(पटाक्षेप)

इति द्वितीयाङ्क।

तृतीय अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर–महाराज मानसिंह का आतिथ्य–एक सुसज्जित कमरा–महाराज मानसिंह और कुंवर अमरसिंह बैठे हैं। भीमाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं।)

(नेपथ्य में गान)

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छवि पै रे खद्योत इठलात।
है दिन चार साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात।
भानु उदय कहुं देखि न परिहै कोउ न पूछिहै बात।
रविकुल रवि प्रताप के जागे रिपु कुल मानत मात॥

मानसिंह। (स्वगत) यहां के ढङ्ग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्हीं पर है। अच्छा देखें यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राणा जी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किए हैं; परन्तु अब तक आप क्यों नहीं पधारे?

मन्त्री। (हाथ जोड़ कर) हुकुम अन्नदाता जी आज श्री हुजर का शरीर अच्छा नहीं है, कुँवर जी तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिए शास्त्रों ने भी कहा है "आत्मावै जायते पुत्रः"

मानसिंह। हां, आपका कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी. हमारे तो यह सिरताज ही हैं परन्तु जब तक श्री एक

लिङ्ग जी की कृपा से राणा जी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायगी, और आप न पधार कर लड़कों को भेजना अपने घर में आए हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राणा जी से विनती कीजिए, हमारी जो कुछ भूल चूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मन्त्री। नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिए। यह बात नहीं है। श्रीजी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह। (दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणा जी ने अपने घर आए हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं (चावल के दाने पगड़ी में रख कर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्द फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।

(चलने को उद्यत होते हैं।)

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं।)

प्रतापसिंह। सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोइ दई आपनी बड़ाई।
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनकौ मुख वीर सबै सिर रहे नवाई।
तिन के सँग खानो कहा मुख देखन हू पाप है।

जाइ सीस बरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है ।

अच्छा अब आप सुख से पधारिए और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथिसेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिए, यही प्रार्थना है ।

(मानसिंह क्रोध के साथ राणा की ओर देखते हुए जाते हैं ।)

प्रतापसिंह । मंत्री,

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो ।
ताहि आज या कुलकलंक ने पायन परस्यो ॥
तातें याहि धुवाइ शुद्ध गङ्गोदक छिरकौ ।
नाना विधि दै धूप वायु के मल कों हिरकौ ॥
हमहुँ सवत्सा गाय दान विप्रन को देहीं ।
मुख देखन को आप प्रायछित निज कर लैहीं ॥
अहो वीरगण निर्भय रहौ सचेत सदाई ।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई ॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं ।
कोउ न कहै नहिं रहे बीर छत्री भारत महिं ॥
बहु देसनि करि विजय ब्याह अधमन की बाला ।
अकबर को मन बहकि रह्यो धन मद एहि काला ॥
गर्व खर्व करि थापि आपुनी हांक तासु जिय ।
अहो बहादुर चूकौ जिन अवसर न हाथ दिय ॥
जँह साहस जँह धर्म जहां सांचे सब संगी ।
तहीं विजय निहचय तासों सब होहु इकङ्गी ॥

सब । महाराज ऐसा ही होगा ।

(पटाक्षेप)

द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर, राणा चिन्तित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं।)

प्रताप। पुरोहित जी! कल का वृत्तान्त तो आपने सुना ही होगा, अब बहुत शीघ्र मेवाड़ में समराग्नि भभकना चाहती है।

पुरोहित। हुकुम अन्नदाता जी, मैंने सब सुना। मुझे तब से बड़ी चिन्ता है।

प्रताप। चिन्ता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा असमर्थ समझते हैं?

पुरोहित। नहीं अन्नदाता जी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परन्तु मुझे इस लड़ाई में देश की महान् दुर्दशा दिखाई पड़ती है, इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष में मुसल्मानों की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही नहीं वरञ्च असम्भव है, फिर व्यर्थ बैठे बिठाए देश को उजाड़ करने से क्या लाभ? अब हमारा उनका चोली दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिए जिनसे आपस में भ्रातृभाव बढ़े।

प्रताप। पुरोहित जी! आपका कहना ठीक है पर आप ने इसका पूरा वृत्तान्त नहीं सुना है इसीसे ऐसा कहते हैं नहीं तो कदापि ऐसा न कहते। प्रतापसिंह क्षत्रिय सन्तान है–क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि को नाश करे और उसके आगे अपराधी बनै, दूसरे हम लोग हिन्दू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यन्त उदार भावपूर्ण है, प्राणी मात्र की रक्षा करना

हमारा धर्म है, फिर यह क्योंकर सम्भव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्या वे लोग उसी जगत्पिता के सन्तान नहीं हैं ? परन्तु महाराज, हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें। जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते। देखिये हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पन किया, जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़ कर पुत्ररत्न को गँवा कर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर–उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसल्मानी झण्डा फहराय और हम उसे सुख से देखें ! हमारे आर्य भाइयों को मुसल्मान बनावें और हम आंख वन्द करलें?

पुरोहित। धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं परन्तु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं ? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गोरांगों का राज्य होगा। फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे बिठाए अपने ऊपर झगड़े खड़े करने से क्या लाभ?

प्रताप। पुरोहित जी, यह आप क्या कहते हैं ? क्या यह समझ कर कि कल तो हमको मरना हो है आज ही से खाना पीना छोड़ देना उचित है ? आप निश्चय रखिए अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक यूरोप का विद्वान अकबर के दर्बार में है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस

दिन इन सभों के हाथ से यह राज्य निकल जायगा, परन्तु क्या यह सब सोच विचार कर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिये ? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसकी प्रार्थनानुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय ?

पुरोहित हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है ? उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है ? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिए।

प्रतापसिंह। गुरुदेव,

जेहि मुख तें ये वैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलङ्कित बचन उचारे॥
करि वश क्षत्रिय कुल कलंक ह्वै चार बिचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आजु सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहिं तुव पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुख सों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित। अन्नदाता जी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्री एकलिंग जी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सब से पहिले एकलिंग जी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष में आज पूजन करें।

प्रताप। अवश्य, चलिए।

(दोनों का प्रस्थान।)

तृतीय गर्भाङ्क ।

(उदयपुर के एक सुन्दर उद्यान में पुष्पित गुलाब के वृक्ष के निकट एक सुन्दरी खड़ी है और दूर पर एक कुंज की ओट से एक युवा पुरुष अलक्षित भाव से अतृप्त नेत्र से उसकी ओर देख रहा है*)

सुन्दरी (एक फूल तोड़ कर)

अरे तेरे कोमल तन पर वारियां ।
मधुर रंग माधुरी गंध पै तन मन भई बलिहारियां ।
झलक लखत बाँकी तुव अंग मैं, मैं तो भई मतवारियां ।
तुव मिलाप मैं कंटक जे वे, कसक कसक उर फारियां ॥

अहा, गुलाब तेरा रूप जैसा सुन्दर है नाम भी वैसा ही मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है। प्यारे गुलाबसिंह. देखो तुम्हारे वियोग के दिनों को इन्हीं गुलाबों के साथ काटती हूं । येही मेरे आराध्य देव हैं। अहा, कहीं ये ही गुलाबगुलाबसिंह हो जाते ।

युवा। (कुँज की ओट से)

'या आला अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल ।
फिर बसन्त पैहै सखी इन डारन तरु फूल ॥

सुन्दरी । (चकपका कर) हैं, यह अमृत वर्षा कहां से !

युवा । (कुञ्ज की ओट से)

अरे कोउ मधुकर की सुधि लेहु ।
घायल तलफत प्रान गंवावत तेहि बिसारि जनि देहु ।
रे मालति तुव बिरह भौंर भटकत बन बन तजि गेहु ।
राखि लेत किन बरसि दया करि प्रेमसुधा घन मेहु ॥१॥

---

* गुलाबसिंह और मालती के चरित्र से ऐतिहासिक कोई सम्बन्ध नहीं है ।

सुन्दरी। वाह! यह तो वही स्वर जान पड़ता है जिसकी झंकार सदा मेरे हृदय में गूँजा करती है (युवा को कुञ्ज की ओट से निकल कर धीरे धीरे अपनी ओर आते देख कर घबराई हुई दांतों के नीचे ऊंगली दाब कर) हैं तो गुलाबसिंह ही। हाय, मैंने आज तक अपने हृदय के भाव को कैसी कठिनाई से छिपा रक्खा था; पर आज अनायास वह प्रकाश हो गया। अब क्या करूँ (लज्जा के साथ वस्त्र को संभाल कर उङ्गली दांत के नीचे दाबे दूसरे हाथ में लिए गुलाब की ओर नीची दृष्टि से देखती पुतली की भांति, कुछ मुड़ कर, खड़ी हो जाती है)

गुलाबसिंह। (सुन्दरी के पास आकर उत्कण्ठित भाव से) प्यारी मालती, अब कब तक भटकाओगी? हाय, तनिक तो जी में दया विचारो!

मालती। (उसी भाव से) गुलाबसिंह, तुम क्यों दुःख उठाते हो? इस उद्यान में बहुत से सुन्दर फूल हैं, किसी और की ओर जी लगाओ, इसकी आशा छोड़ो।

गुलाबसिंह।

चातक स्वाती तजि कबौं अमृतहु परसै न।
ताकी गति जग और को जेहि मारे तुव नैन॥

मालती। (गुलाबसिंह की ओर फिर कर) गुलाबसिंह, मैंने बहुत चाहा था कि अपने जी के भाव को तब तक छिपाऊं जब तक अवसर न पाऊं, पर क्या करूँ आज दैवयोग से वह आप ही प्रकाश हो पड़ा। मैं क्या करूँ मेरी तो प्रेम और नेम के बीच में सांप छछून्दर सी गति

हुई। मैं क्षत्राणी हूँ इससे अपनी प्रतिज्ञा से लाचार हूँ और इसी से तुम्हें निराश होने के लिये कहती हूं।

गुलाबसिंह। क्या मैं उस प्रतिज्ञा को सुन सकता हूँ ?

मालती। हां हां उसके सुननेके अधिकारी तुम्हीं तो हो सुनो—

प्रबल शत्रु दल दलि निज बल मेवार बचावै।
म्लेच्छ रुधिर प्यासी भुव की जो प्यास बुझावै॥
आर्य धर्म की धुजा गगन को भेदि उड़ावै।
क्षत्रिय कुल मेवाड़ देश को नाम बढ़ावै॥
ताकी सेवा करन मैं बड़भागिनि सुख पाइहौं।
नहिं तौ यह जीवन सदा इकली बैठि बिताइहौं॥

गुलाबसिंह। (आवेश से) अच्छा तो आज मैं भी जो प्रतिज्ञा करता हूं उसे सुन रक्खो—

जबलौं निज बल को फल इनकौं नाहिं चखाऊं।
म्लेच्छ धुजा को काटि न जबलौं भूमि गिराऊं।
आर्य धर्म की जय धुनि सौं सब जग कंपाऊं।
निष्कंटक मेवार देस जबलौं न बनाऊं।
तब लौं मुख करि सामुहें तुमसौं कबहुं न भाषिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहिं अभिलाषिहौं॥

(वेग से जाता है और मालती अतृप्त नैन से उसकी ओर देखती है।)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर राजपथ, गुलाबसिंह का चिन्तित भाव से प्रवेश।)

गुलाबसिंह। भूलि जिय काहू सों न लगै।
जबलौं रहै, रहै निज बस को दूजे सों न पगै।
पगै तो वाही संग पगै जो अपुने रंग रँगै।
दई निरदई प्रेममई सों कबहूं नाहिं बगै॥

हाय! आज कितने दिनों की कितनी आशा और अभिलाषा को उसने एक दम में पलट दिया! प्यारी मालती! भला अपने इस व्याकुल प्रेमी की दो दो बातें तो सुन ली होतीं, इसके दुःखों की कहानी तो अपने कानों तक पहुँच लेने दी होती, जी भर के एक बेर देख तो लेने दिया होता, तूने तो ऐसी लट्ठ सी मार दी कि मेरे सभी हौसले पस्त हो गए (कुछ ठहर कर) और मैं ही धीरज धर कर दो दो बातें कर लेता तो क्या होता! पर हाय! मैं क्या करता, उसकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं अपने आपे में तो थाही नहीं, कहता क्या और सुनता क्या! उस स्वाभाविक वेग को संभालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। अच्छा, अब जो हुआ अच्छा ही हुआ, अब तो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करने का उद्योग करना चाहिए।

(वीरसिंह का प्रवेश।)

वीरसिंह। यह आज आप बेपेंदी के लोटे की तरह क्यों लुढ़कते फिरते हैं।

गुलाबसिंह। कुछ तो नहीं।

बीरसिंह। कुछ तो नहीं क्या ? "कछु पिय सों खटपट भई टपटप टपकत नैन" का मामला दिखाई देता है—क्यों यार कैसा ताड़ा ?

गुलाबसिंह। (हँसकर) तुम्हें सदा हँसी ही सूझती है—खटपट किस बात की ?

बीरसिंह। यह जानो तुम—यहां तो सदा पौ बारह है।

गुलाबसिंह। अच्छा, अब यह मसख़रापन रहने दो—हमारी इच्छा है कि आज दिल्ली चलें।

बीरसिंह। क्यों ? क्या उधर से यह आज्ञा मिली है ?

गुलाबसिंह। देखो, हर समय की हंसी अच्छी नहीं होती. यहां तो न जाने क्या बीत रही है और तुम मानते ही नहीं।

बीरसिंह। यह न कहिए—"जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले" मैंने तो पहिले ही कहा था।

गुलाबसिंह। तुम्हें हाथ जोड़ते हैं तंग न करो, यह बताओ तुम हमारे साथ दिल्ली चलोगे या नहीं ?

बीरसिंह। सुनो भाई हम तो तुम्हारे साथ नरक में भी चलने को तैयार हैं. पर बिना तुम्हारा मतलब सुने न आप जाएंगे न तुम्हें जाने देंगे।

गुलाबसिंह। मतलब क्या ? तुम नहीं जानते कि महाराज मानसिंह यहां से चिढ़ कर गए हैं ?

बीरसिंह। तो फिर, तुम्हें क्या ?

गुलाबसिंह। अजी वहां जाकर एक की अट्ठारह लगावेंगे और न जाने क्या उपद्रव उठावेंगे, चलो आगे से उस की ख़बर छिप कर ले आवें।

बीरसिंह। हां तो मैं चलने को तैयार हूं (मन में) ऐसेही तो खबर लानेवाले थे; आज जान पड़ता है कि उधर से

मुँह की खाई तो जी में यही समाई (प्रगट) अच्छा तो ज़रा घरवाली से भी बिदा हो लूँ ।

गुलाबसिंह । हां हां, पर शीघ्र आना ।

वीरसिंह । अभी आया, और—और तुम भी जरा उधर···(आंख मटकता है)

गुलाबसिंह । चल लुच्चे—(ढकेलता है । एक ओर से वीरसिंह हँसता हुआ और दूसरी ओर से गुलाबसिंह कुछ अप्रतिभ सा होकर जाता है ।)   (पटाक्षेप)

इति तृतीय अङ्क ।

चतुर्थ अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान श्रीवृन्दावन । तानसेन के पीछे पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर का प्रवेश ।)

तानसेन । (अकबर की ओर फिर कर) जहांपनाह, यह वड़ाही ग़ज़ब कर रहे हैं ।

अकबर । तानसेन ! चुप भी रहो, कोई जान लेगा तो फिर सब लुत्फ़ जाता रहेगा । आहा ! तानसेन, यहां तो कुछ जी ही और हुआ जाता है, ग़ैर मज़हब होने पर भी यहां की मिट्टी में लोटने को बेतरह जी चाहता है और इन भोली भाली व्रजवासिनियों की सहज बातें तो तान सुर को मात करती हुई जी को खींचे लेती हैं। (चौंक कर) वह देखो, मोर बोला और जी में कुछ और ही झलक सी झलकी ।

तानसेन । खुदावन्द ! मैं हुज़ूर से ग़लत थोड़े ही अर्ज़ करता था, यह ज़मीन कुछ और ही है और फिर जब हुज़ूर मेरे गुरु जी महाराज श्री स्वामी हरिदास जी का दर्शन करेंगे उम्मीद है तबीयत ही दूसरी हो जायगी।

अकबर । भाई, उनके इश्तियाक़ ने तो मुझे बावला ही बना रक्खा है ।,उन्हीं के दर्शन के लिये तो यह सूरत बनाई है । (आगे की ओर देख कर)वह देखो चन्द व्रजवासिनी गाती हुई जल भरने के लिये इधरही की ओर आ रही हैं। वाह वाह क्या समा है ! धन्य ! व्रजगोपिका धन्य !

(दोनों एक किनारे खड़े होते हैं । कुछ व्रजवासिनी सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं ।)

ब्रजवासिनीगन—(गीत)

" माई री नेकु न निकसन पैये।
घाट बाट पुर बन बीथिन में जहीं तहीं हरि पैये॥
उत सुनियत इत को चलियत हू मन वाही पै जैये।
ब्रह्मदास छूटिए कहां लौं कान्ह भई ब्रज मैये॥

एक ब्र०। अरी बीर!

दूसरी ब्र०। का कहै बीर!

पहिल ब्र०-अरी नेक पांय बढ़ाए चल: या ब्रज में ऊधमी को राज ठहर्‌यो। कहूं काहू पै दीठ न परि जाय-सिदौसिऐ घर कूँ चल।

तीसरी ब्र०। हम्बे बीर-चल। (सब जाती हैं।)

तानसेन-(विह्वल होकर) खुदावन्द! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा? धन्य है उनके भाग्य, जिन्हें ब्रजरज नसीब हो।

अकबर-तानसेन! आज़ तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझ से नापाक बदबख़्त को भी ब्रजरज नसीब हुआ। धन्य है बीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं।

तानसेन-इसमें तो शक नहीं। हुक्म हो तो तावेदार इस वक्त हस्ब हाल कुछ सुनावै।

अकबर—जरूर-मैं तानपूरा छेड़ता हूँ।

तानसेन—

" नैन मांगौं इन्द्र सौं जासौं दरसन करौं अघाय अघाय।
रसना मांगि लेहूं सहस फनसौं जासौं गोबिन्द गुन गायो जाय॥

लङ्कापति सौं सीस मांगि लेहु जो बन्दन करूं बनाय बनाय।
सहसबाहु सौं भुज मांगि लेहुं तानसेन के प्रभु परसन कौं पाय॥
(पटाक्षेप)

द्वितीय गर्भाङ्क ।

(स्थान दिल्ली—राज्यपथ)

(एक हिन्दू और एक मुसलमान नागरिक का प्रवेश ।)

मुस० । (हिन्दू को देखकर बड़े प्रेम से सलाम करके) अख्खाह भाई बिहारी लाल! आज तो बाद मुद्दत के मुलाक़ात हुई। कहिए सब ख़ैरियत तो है ।

हिन्दू । (प्रेमपूर्वक मुसल्मान का कर स्पर्श करके) आपकी दया से सब ख़ैरियत है । क्या कहैं भाई मेहरअली! काम काज की भीड़ में छुट्टी तो मिलती ही नहीं, क्या करैं कहां जांय ? अपनी ख़ैरसलाह ख़ैरआफ़ियत कहिए!

मुस० । (सलाम करके) शुक्र है-कहो दोस्त आजकल रोज़गार का क्या हाल है ?

हिन्दू-भाई परमेश्वर इस मुसल्मानी बादशाहत को क़ायम रक्खै और हमारे बादशाह सलामत को उम्र दे । इन दिनों जैसे आनन्द से दिन कटते हैं कुछ कह नहीं सकते। बेखटके खूब रोज़गार करते हैं और खूब बरकत होती है।

मुस० । इस में तो शक नहीं-भाई साहब हमारा तुम्हारा तो चोली दामन का साथ है—अगर हमारे हाथ से तुम्हें कोई ईज़ा पहुँची तो तुफ़ है हम पर ! चन्द नाआक़बत अन्देश बादशाहों ने तुम लोगों की कुछ ईज़ारसानी की थी, अब खुदा चाहेगा तो मुसल्मानी सल्तनत में हिन्दुओं को बहुत आराम मिलेगा ।

हिन्दू। परमेश्वर ऐसा ही करै-भाई हम लोग तो राजभक्त प्रजा हैं-हमारी यह इच्छा नहीं कि हम राजगद्दी पर बैठें, हम तो अपने राजा को चाहे वह कैसा ही क्यों न हो ईश्वर का अवतार ही समझते हैं। हां ज़रा हम से चुमकार कर बोलिए हम प्रसन्न हो जांय, डांट दीजिए हम मन ही मन मसूस कर रह जांय, देखिए पण्डितराज ने हमारे हज़रत सलामत के बारे में क्या अच्छा कहा है

'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"

और हम लोगों का यही विश्वास भी है।

मुस०। भाई हमारे बादशाह सलामत तो तुम्हीं लोगों के भरोसे शाही करते हैं और तुम्हारे ही बल पर नाज़ां हैं, देखो आधे से ज्यादा वज़रा हिन्दू ही हैं, महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, राजा मटूशाह वग़ैरह कैसे कैसे दक्क़ाक़ और ख़ैरख़्वाह वज़ीर हैं, और लुत्फ़ तो यह है कि इनके हाथ से जो इन्साफ़ और फ़ैज़ मुसलमान रैयत को मिलता है वह मुसल्मान वज़रा से नहीं। खुदा हम दोनों हिन्दू मुसल्मानों की मुहब्बत यों ही ता अबद निबाह दें।

हिन्दू। तथास्तु, सुना है आज दर्बार में बड़ा जशन होगा, महाराज मानसिंह दक्खिन फ़तह कर आते हैं, चलिए न हम लोग भी ज़रा दर्शन कर आवें।

मुस०। बिस्मिल्लाह तशरीफ़ ले चलिए।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से चारन के वेश में गुलाबसिंह और वीरसिंह का प्रवेश।)

गुलाबसिंह। बीरसिंह, दिल्ली की शोभा अकथनीय है, ऐसा सुन्दर और श्रीमान् नगर तो इस समय संसार में दूसरा कोई न होगा। यह चौड़ी सड़क, आकाश से बात करने-वाले महल, मन को प्रसन्न किये देते हैं।

वीरसिंह। इसी लिये मैं दिल्ली नहीं आता था, मैं तो पहिले ही से जानता था कि कहीं आपका विगड़ैल जी किसी महल में न मचल जाय, सो कुछ लक्षण दिखाई देने लगा।

गुलाबसिंह। तुम तो एक विलक्षण मनुष्य हो, कोई बात ही ऐसी न बोलोगे कि जिसमें व्यंग न हो।

वीरसिंह। अच्छा लो अब हम न बोलेंगे, हमारी बात तुम्हें नहीं सुहाती तो हम बोलेहींगे नहीं।

गुलाबसिंह। (उंगली से दिखाकर) वीरसिंह, देखो वही वीर-वर पृथ्वीराज का कीर्तिस्तम्भ जान पड़ता है। हाय!

बीरसिंह। (मुँह फेर कर)--चुप

गुलाबसिंह। बीरसिंह इधर देखो।

वीरसिंह। (निश्चल)

गुलाब०। हाथ जोड़ते हैं अब कुछ न कहैंगे ज़रा इधर तो फिरो।

वीरसिंह। (और भी हट गया)

गुलाबसिंह। सुनते हो कि नहीं!

वीरसिंह। (चुप)

(नेपथ्य में)

सावधान सब लोग होहु निज पथ अनुसारा।
मिले धूर में सहज जौन मरजादहिं टारा।
देश देश बस करत बाहुबल अरिहिं चखावत।
दिल्लीपति मरजाद थापि मन मोद बढ़ावत॥

करि विजय शत्रु दल दलन करि मानमहीपति आवहीं
कर कुसुम लिये सुरबधूजन चढ़ि विमान जस गावहीं॥

गुलाबसिंह। जान पड़ता है महाराज मानसिंह दर्बार में जाते हैं। तो अब हम लोगों को भी शीघ्र चलना चाहिए।

(दोनों जाते हैं।)

(स्थान—शाही दर्बार)

(अकबर सिंहासन पर विराजमान है. दोनों ओर साफ़ा बांधे राज्यपारिषद्गण खड़े हैं। कई एक नर्तकी गान और नृत्य कर रही हैं, बड़ा प्रकाश और बड़ी तयारी है)

बढ़े औज इस तख़्त का या इलाही।
दुरख़्शां रहे कौकबे बख़्ते शाही॥
उदू होवें पामालो मग़लूब शह के।
पड़े उनके सर पर सरासर तबाही॥
रहे हुक्मरां सब का अल्लाह अकबर।
जहां में जहां तक कोई होवे राही॥
तेरे सायए फ़ैज़ से बहरःवर हों।
है मख़लूक जो माह से ता बमाही॥

अकबर। आज निहायत ख़ुशी का दिन है, हमारे कूवते बाज़ू महाराज मानसिंह आज वह काम करके तशरीफ़ लाते हैं जो कि ख़ास हम भी शायद न कर सकते। सूबए दक्खन का फ़तह करना कोई दिल्लगी न थी, यह काम महाराज मानसिंह ही के हिस्से का था (दर्बारियों से) जिस वक्त महाराज तशरीफ़ लावें आप सब लोग उन्हें मुबारकबादी दें।

सब । बजा इर्शाद खुदावन्दे आलम ।

अकबर । मगर देर बहुत हुई, महाराज की सवारी की ख़बर
तो बहुत अर्सा हुआ आई थी !

(नेपथ्य में)

सावधान दिगपाल संभारहु निज दिसान कों।
हे नक्षत्र थिर रहौ सफल निज निज सुथान कों ॥
अहो सिंधु मरजाद गहो जौ चहौ मान कों
हे अभिमानी बीर भगौ चाहौ जु प्रान कों ॥
निज भुज बल जग बस करत कायर हृदय कंपावहीं।
विजय लच्छमी लुटत पद मान महीपति आवही ॥

अकबर । वह महाराज आ गए ।

चोबदार । (स्वर से) निगाह रूबरू जहांपनाह सलामत।

(महाराज मानसिंह का प्रवेश ।)

अकबर (अर्धऽभ्युत्थान देकर) मुबारक महाराज, दक्खन
की फ़तह आपको मुबारक ।

(सब लोग इसी को दोहराते हैं ।)

मानसिंह । (महा क्रोध के साथ पगड़ी को अकबर के सामने
पटक कर कंपित स्वर से)

रहै मुबारक यह मुबारकी शाहनशाहा ।
बढ़े औज शब रोज़ तख़्त का जहांपनाहा ॥
दुश्मन हों पामाल आपके आली जाहा ।
रैयत हो दिलशाद दुआगो पे नरनाहा ।
इस गुलाम नाचीज़ की ख़ता बख़्श सब दीजिए ।
रज़ा बख़्श के अब हमें इज्ज़तबख़्शी कीजिए ॥

अकबर । (आश्चर्य और क्रोध के साथ खड़े हो कर) इसके
मानी क्या हैं ? महाराज, हम लोग आज आपकी

फ़तहयाबी पर कैसी ख़ुशियां मना रहे हैं और आप ऐसे रंजीदः हो रहे हैं। फ़र्माइए तो किस नाकाम का काम आज पूरा होनेवाला है, किसने सिंह की गुफ़ा में जान बूझ कर हाथ डाला है?

कहिए तो दिल को आप के है किसने दुखाया।
खुद जान बूझ मर्ग को है किसने बुलाया॥
अकबर के तेग़ तेज़ को है किसने भुलाया।
नाम उसका हमें जल्द कहो बहरे खुदाया॥
उसको हम एक आन में पामाल करेंगे।
उसके लहू से तेग़ के दामन को भरेंगे॥

मानसिंह। खुदावन्द, इस दुनियां में सिवाय अभिमानी प्रतापसिंह के और कौन जन्मा है जो हुजूर के ग़ज़ब से न डरता हो?

पृथ्वीराज। (मन में) सच है, सिंह का कान सिंह ही खुजलाता है।

अकबर। (मानसिंह को पगड़ी अपने हाथ से पहिरा कर) क्या प्रतापसिंह का दिल इतना बढ़ गया है कि उसने महाराज मानसिंह का अपमान किया? सच है, चींटे की जब मौत आती है उसे पर जम जाते हैं। फ़र्माइए तो हुआ क्या?

मानसिंह। खुदावन्द मैं दक्खिन से लौटने के वक़् उदयपुर के रास्ते आया। राणा ने बड़ी तयारी के साथ मेहमानी की, मगर मेरी बेइज़्ज़ती की ग़रज़ से खाने में खुद न शरीक हो कर अपने कुंवर को भेज दिया और जब मैंने ख़ुद आप बग़ैर खाने से इन्कार किया तो बड़े तैश

के साथ आकर बोले—जिसने अपनी बहिन मुसल्मान के साथ ब्याही उसके साथ मैं कभी नहीं खा सकता।

(क्रोध से आंखें लाल हो जाती हैं।)

पृथ्वीराज। (मन में) धन्य प्रतापसिंह, धन्य ! तुम्हारे सिवाय और किस में इतना जात्याभिमान है ?

अकबर। (क्रोध से कांपता हुआ) प्रताप की इतनी बड़ी जुरअत हो गई ? उसको इस बात का ग़र्रा है कि अब तक उसकी लड़की इस ख़ान्दान में नहीं ली गई! ख़ैर (मुहब्बतख़ां की ओर) आप उदयपुर पर चढ़ाई का सामान बहुत जल्द करें, देखा जायगा प्रतापसिंह का कितना प्रताप है।

(एक चोबादार का प्रवेश)

चोबदार। (हाथ जोड़कर) खुदावन्द ! दो परदेशी फ़र्यादी आए हैं, कहते हैं उन लोगों को उदयपुर के राणा ने लूट लिया है।

अकबर। हाज़िर लाओ।

(चोबदार का जाना और एक जौहरी तथा एक पोर्तुगीज़ फ़िरंगी को साथ लेकर आना।)

अकबर। तुम लोग कौन हो ?

पोर्तुगीज़। खोडावंड, अम पोर्तुगीज़ हैं, अमारा नाम अगस्टाइन है। अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हजूर के लिये बहुट सा नज़र लेकर भेजा ठा, राह में उडयपुर के राजा ने अमको लूट लिया, बोला अमारे सिवाय बाडशाह कौन है, यह नज़र अमारा है।

जौहरी (हाथ जोड़कर) जहाँपनाह फ़िद्वी जौहरी है, बहुत से बेशक़ीमत जवाहिरात लेकर हुज़ूर को मुलाहिज़ा

कराने के लिये आता था। मैं यह समझकर कि हुज़ूर के अहदेहुकूमत में किस की मजाल है जो शाही रय्यत पर आंख उठावेगा, बेखटके आ रहा था मगर रास्ते में उदयपुर के राणा ने मेरा सब माल लूट लिया। हाय ! अब मैं क्या करूं !

अकबर। तुम लोग घबराओ मत, अब उसका प्याला लबरेज़ हो गया, बहुत जल्द वह अपनी सज़ा पाएगा और तुम लोगों की हालत पर भी ख़ियाल किया जायगा। (मान-सिंह से) महाराज, बिहतर होगा कि आप भी मुहब्बत-ख़ां के साथ तशरीफ़ ले जांय और उस नाबकार को उसके किर्दार का मज़ा चखाएं।

मानसिंह। जो हुक्म खुदावन्दे आलम !

तब ही लौं सब दाप, जब लौं दीठ न तुव फिरी।
कह बापुरो प्रताप, कोपे अकबरशाह जब ॥

(पटाक्षेप)

सब। आमीं आमीं।

चतुर्थ गर्भाङ्क ।

(स्थान दिल्ली में पृथ्वीराज का घर)

(पृथ्वीराज, गुलाबसिंह और बीरसिंह आते हैं)

पृथ्वीराज। यहां का हाल तो तुमने छिप कर अपनी आँखों से देख ही लिया, अब तुरंत उदयपुर जाओ और राणा जी को समाचार दो। यहां की फ़ौज पहुँची जानो। हमारी ओर से निवेदन करना कि सारे क्षत्रियों ने तो डुबा ही दी है, अब केवल मान मर्याद आप ही के हाथ है, सो आप दृढ़ रहैं, कहीं से डिगैं नहीं। श्री एकलिंग

जी की कृपा से सब अच्छा ही होगा । और यहां मैं आप का सेवक हुई हूं, बराबर यहां के समाचार देता रहूंगा।

गुलाबसिंह । कुँअरजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें। प्रतापसिंह क्षत्रिय वंश का नाम हँसने न देंगे । उनके हाथ में शस्त्र ग्रहण की सामर्थ्य है । मैं अभी जाता हूं रात दिन चल कर पहुँचूगा और आपका संदेसा ठीक समय से पहुंचाऊंगा, पर आप एक पत्र भी दें तो बहुत अच्छा हो।

पृथ्वीराज । अच्छा मैं पत्र लिख देता हूं । तुम कहीं रुकना मत, सीधे चले जाना । (पत्र लिखता है।)

वीरसिंह । भाई गुलाबसिंह, तुम दर्बार से सिपारस करके महाराज मानसिंह की मेहमान्दारी हमें दिला देना।

गुलाबसिंह । तुम क्या मेहमानी करोगे ?

वीरसिंह । अजी देखही न लेना, (हाथ से दिखाकर) यह बड़े बड़े तो बारुद के लड्डू खिलाऊंगा और आवे खंजर का जल पिलाऊंगा, जब पेट भर अघा जांयगे खूब स्वच्छ चमकता हुआ तिलक करके हाथ में नारियल देकर विदा करूंगा । (सब लोग हंसते हैं।)

गुलाबसिंह । तुम्हें दिल्लगी ही की सूझती है ।

वीरसिंह । अच्छा न सही, तुम्हीं उनकी खातिदारी करना। जिसमें दिल्लगी न हो सो करना ।

पृथ्वीराज (पत्र देकर) अब आप लोग बिना विलम्ब किए चले जाँय और खूब सावधान रहें।

(दोनों चलने को उद्यत होते हैं ।

(नेपथ्य में ।)

जय जग जननि उदार, दनुज दलनि भवभय हरनि ।
लै खप्पर तरवार, रच्छा निज जन की करहु ॥

पृथ्वीराज। अहा! शकुन तो बहुत अच्छा मिला। मा! कब तक चुपचाप बैठी रहोगी? कब तक अपने सन्तानों की दुर्दशा देखती रहोगी? अब उठो, मौन साधने का समय नहीं है, (खड़े होकर) देवीजी की आरती का समय है चलें, हम भी प्रार्थना करें। (प्रस्थान।)

पञ्चम गर्भाङ्क।

(दिल्ली—मुसलमानों की गोष्ठी)

एक मुसलमान। यार हम लोगों को तो अब कोई पूछता ही नहीं, क्या करें?

दूसरा। अजी पूछे कहां से—अपनी पौ बारह तो तब हो जब कुछ राग रंग हो, कुछ इधर उधर झांक झूँक हो, सो यहां कोई ठिकाना ही नहीं।

तीसरा। कुछ पूछो मत, हमारे बादशाह सलामत तो ऐसे मुल्लाजी हैं कि कभी कोई फ़र्माइश ही नहीं करते। सिवाय अपनी बीबी के कभी इधर उधर की हवा ही नहीं खाते।

चौथा। अजी निरा मज़दूरा है, यह क्या बादशाह होने क़ाबिल है? रात दिन पीसना पीसा करता है; जब देखो हज़रत काम में मशगूल हैं—ऐशआराम तो इसे ख़्वाब में भी नसीब नहीं।

पांचवां। शहर की तवायफ़ें तो बिल्कुल रांड हो गईं। उन सभों की हालत पर तो रहम आता है, भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कहीं तख़्त मिल जाय तो रंग बाँध दूं, उन बिचारियों के दुःख दरिद्दर दूर कर दूं और सारे शहर में रजगज मचा दूं।

पहिला। अब वह दिन दूर गए, बैठे रोया करो, मुहर्रमी सूरत बनाए रहो, दर्बार में तो क़दम रखने का जी नहीं चाहता, जिन लोगों से जूते उठवाते थे अब वे सब दर्बार में बड़े मन्सब पाकर बढ़ बढ़ कर बोलते हैं।

चौथा। (लम्बी सांस लेकर) भाई जान, कहें क्या, जब अपना ही सोना खोटा हो तो परखवइया का क्या कुसूर? अरे जब हज़रत सलामत ही क़ाफ़िर हो गए तो फिर ये सब क्यों न उभड़ें।

तीसरा। और लुत्फ़ तो यह है कि हम लोग लब भी नहीं हिला सकते, ज़रा बोले नहीं कि वह बेभाव की पड़ने लगी कि सिर खुजला कर रह जाना पड़ता है।

(बी इलाही जान का प्रवेश—सब उठ उठ कर लम्बी चौड़ी आदाब अर्ज़ करते हैं।)

इलाहीजान। (सब को सलाम का जवाब दे कर) क्यों हज़रत, क्या हम लोगों के नसीब के साथ आप लोगों का दिल भी फिर गया?

पहिला। भला ऐसा कभी हो सकता है, जानेमन! हम लोगों की तो ज़िन्दगी तुम हौ। तुम से कभी दिल फिर सकता है? मगर करें क्या मजबूरी है क्या मुँह लेकर आवें, न गिरह में दाम है और न कहीं किसी उम्रा के यहां कुछ तार लगता है।

तीसरा। अजी इस मनहूस बादशाह ने तो शहर को बेरौनक़ कर डाला, और तुर्रा यह है कि आप तो आप आप, आपके मुसाहिबीन और वज़रा भी जामय पारसाई पहिने हैं! अब हम लोग क्यों कर जीएँगे?

इलाहीजान। अब इसकी फ़िक्र कहां तक करोगे, अगर हम

तुम सलामत रहेंगे, तो बहुतेरे गांठ के पूरे आंख के अन्धे फँसैंहींगे, मगर मुलाक़ात क्यों तर्क करते हो ? मैं कभी कुछ कहती हूँ ?

चौथा। तुम्हारे इसी सब्र का नतीजा तो है कि इसी मनहूस के वक़् में एक मौक़ा हाथ आया।

सब। (घबरा कर) कौन मौक़ा ?

चौथा। (बड़ी शेख़ी के साथ) अजी हज़रत आप लोग कुछ ख़बर भी रखते हैं, अलमस्त पड़े रहते हैं, बन्दः रात दिन इसी फ़िराक़ में पड़ा रहता है, आप को क्या ?

पहिला। फ़र्माइए तो मुआमिला क्या है ?

दूसरा। वल्लाह कहो तो सही क्या गुल खिलाया ?

तीसरा। लिल्लाह ! अब देर न करो जल्द ज़ुबां खोलो।

पाचवाँ। मीर साहेब, आप बड़े कारू हैं, आप की क्या बात है आप को सिर की क़सम जल्द उक़्दःकुशाई कीजिए।

(चौथा सिर हिला हिला मोछों पर ताव देता हुआ इधर उधर देखता है पर बोलता नहीं)

इलाहीजान। (मीर साहेब का हाथ पकड़ कर) वल्लाह ! जब से तुमने यह खुशख़बरी दी कलेजा उमड़ा पड़ता है; ख़ुदा के लिये जल्द फ़र्माइए क्या मोक़ः हाथ आया।

मीर। ख़ुदा की क़सम इन सभों को तो मैं हर्गिज़ न बतलाता मगर तुम्हारी बात नहीं टाल सकता ! उदयपुर के राना ने राजा मानसिंह से कुछ बेहूदगी की है इसलिये शाही फ़ौज की उस पर चढ़ाई होने वाली है, बस अब यार लोगों की भी बन पड़ेगी, फ़ौज के हमराह हम भी चलेंगे, मौक़ः पाकर अपना काम बनाएंगे, लूट का माल तो पेनुल माल ही ठहरा और फिर इधर उधर

मौक़े से कोई घात लग गया तो उसमें भी कोई मुज़ा- यक़ा नहीं । वहां से लौट कर आवेंगे तब फिर आपको हाज़िरी देंगे और सारे दिनों की कसर निकालेंगे।

(सब के सब मारे हर्ष के उछल पड़ते हैं और "खूब" "खूब" कह कह कर एक दूसरे से हाथ मिलाते और क़हक़हा मारते हैं ।)

इलाहीजान । (मन में प्रसन्न हो कर परन्तु प्रकाश में कातर स्वर से) नहीं, नहीं, लड़ाई में बड़े ख़तरे रहते हैं । मैं तुम लोगों को न जाने दूंगी ।

मीर । तुमने क्या हम लोगों को बेवकूफ़ समझा है । अरे हमलोग लड़ाई के वक़् टल रहते हैं और जब लूट का वक़् आता है तब सब से आगे कूदते हैं ।

इलाहीजान । और अगर शाही फ़ौज ने शिकस्त खाई ?

मीर । तो हमारा नुक़सान क्या ? उस्तुरा पास रक्खेंगे फ़ौरन डाढ़ी मूँड़ जुन्नार पहिर हिन्दू बन जांयगे ।

इलाहीजान । अच्छा, तो आओ हम लोग खुदावन्द तआला से कामयाबी के लिये दुआ मांगें ।

(सब मिलकर गाते हैं ।)

मुरादें बर आएं हमारी खुदाया ।
हमेशः हो मतलब बरारी खुदाया ॥
जहाँ में जहां तक गुज़र हो हमारी ।
बिछाए रहें जाल भारी खुदाया ॥
बनाए निशाना जिसे वह न छूटे ।
न हो वार खाली हमारी खुदाया ॥
कोई मत का हीना औ पूरा गिरह का ।
रहै करता ख़िदमत गुज़ारी खुदाया ॥

ये बुड्ढे ख़बीसों से दुनियां हो ख़ाली।
हो नौउम्र ज़ी अख़्तियारी ख़ुदाया।
गली कूचे घर घर में ऐशो तरब हो।
हमेशः रहै दौर जारी ख़ुदाया॥
हो घर में मुयस्सर न रोटी व कपड़े।
मगर हो न कम मैख़ुमारी ख़ुदाया॥

(पटाक्षेप।)

पञ्चम अङ्क ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान उदयपुर—देवीजी का मन्दिर)

(मालती पूजा कर रही है)

(नेपथ्य में गान)

जय जग जननि हरनि भवभय दुख भक्ति मुक्ति सुख कारिनि।
असुर निकन्दिनि सुर नर वन्दिनि जय जय विश्व बिहारिनि॥
जब जब भीर परत भक्तन पै तब तब निज वपु धारी।
असुर सँहारत भक्त उबारत आरत हृदय बिचारी॥
तुव पद बल हम गिनत न काहू चरित उदार तुमारे।
अब जिनि बिलम करहु जग जननी मेटहु दुःख हमारे॥ १॥

मालती—मां !

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के"
मैंने कठिन व्रत धारन किया है। मां ! ऐसी सुमति देना जिसमें मन न डिगने पावे। एक ओर प्रेम और दूसरी ओर धर्म है; जननी ! इसका निबाह मेरी सामर्थ्य से बाहर है, केवल तुम्हारी कृपा साध्य है। इस तुच्छ हृदय को उसके सहने का बल प्रदान करो-गुलाबसिंह का उद्योग सफल हो। जगतजननि ! उनकी सफलता के साथ तुम्हारे सन्तानों की भी सफलता है, अतएव इधर ध्यान दीजिए। मां ! अशरणशरणि ! त्राहि !

(गद्गद कंठ से प्रणाम करती है, सखियां आरती लिए आती हैं, मालती आरती करती है, सभों का एक साथ गाना।)

राग रामकली।

"जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि,

भक्ति मुक्ति दायिनि, भय हरनि कालिका। मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश बदनि, नाप तिमिर तरुण तरणि, किरण मालिका॥ वर्म्म चर्म कर कृपाण, शूल सैल धनुष बाण, धरणि दलनि दानव दल, रण करालिका। पूतना पिचाश प्रेत, डाकिनि शाकिनि समेत, भूत ग्रह बेताल खग, मृगाल जालिका॥ जय महेश भामिनी, अनेक रूप नामिनी, समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका। भारत आरत अनाथ, दीजै सिर अभय हाथ, जय जय जगदम्ब पाहि, प्रणत पालिका॥

(मन्दिर में प्रकाश हो जाता है और देवीजी के
कंठ से माला खसक कर गिरती है)

सखियां। ले सखी! तुझे बधाई है, मां ने प्रसन्न हो कर तुझे प्रसाद दिया है।

(मालती माला उठा सिर चढ़ाती है, धीरे धीरे परदा गिरता है)

द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर—राणा का दर्बार।)

(राणा और सर्दारगण यथा यथा स्थान पर बैठे हैं,
गुलाबसिंह राणा के सामने खड़ा है।)

गुलाबसिंह। हुकुम अन्नदाता! बीकानेर कुँवर पृथ्वीराज श्री दर्बार के बड़े शुभचिन्तक हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है।

(पत्र देता है।)

राणा-(पत्र मंत्री को दे कर) मंत्री! इसे पढ़ो।

(मंत्री पढ़ता है।)

स्वस्ति श्री हिन्दू कुल गौरव मान बढ़ावन।
वीरनाद हुंकारि शत्रुदल हृदय कँपावन॥

रविकुलरवि सिसौदिया ध्वज जग में फहरावन।
श्री प्रताप राणा प्रताप जग में फैलावन॥
पृथ्वीराज तुव दास अनेकन करत प्रणामा।
इतै कुशल उत ईश सँवारैं सब तुव कामा॥
सुनिए इत की कथा—मान उत ते जब आए।
बरनत निज अपमान रोष बेहद बढ़ाए॥
ताही समय और फरियादिहु आनि पुकारे।
लूट्यो शाही भेंट कह्यो—कह शाह बिचारे॥
बादशाह भये आग बबूला यह सब सुनतहिं।
मान, मुहब्बतखानहि आज्ञा दीनी तुरतहि॥
एक लाख लै सैन तुरत राना पैं धाओ।
उदयपूर करि चूर सकल गढ़ धूर मिलाओ॥
थापि आपनी थाप दाप परताप मिटाओ।
करि वंदी तेहि तुरत आज दर्बार पठाओ॥
सुनि आज्ञा–फ़रमान किये सेना पर जारी।
मान, मुहब्बतख़ान कूच की करत तयारी॥
पहुंचे समुझौ तिन्हें सदा रखियो हुसियारी।
परम प्रबल अरि दलन, दलन की करो तयारी॥
हम सबनैं तो राजपूत को नाम डुबायो।
अबलौं तुमहीं एक मान मरजाद बचायो॥
पितर खरे अकाश मार्ग तुम्हरो मुख जोवत।
इक तुम्हरीही आस वीर छत्री सब सोअत॥
जब लौं तन मैं रहै प्राण तब लौं जिनि डगियो।
हे प्रताप भारत प्रताप सुधि जिय मैं पगियो।
ह्यां के सब संवाद भेजियौं तुम्हें बराबर।
ह्वां निज जय की ख़बर हमैं दीजौ किरपा कर॥

तुव प्रताप राणा प्रताप सब पूरि रहै छिति ।
विजय लक्ष्मी तुम्हैं मिलै नित किम् अधिकम् इति ॥

राणा । (आवेश के साथ) आवैं, आवैं, हम सदा उनके लिये तैयार हैं, वे आवैं तो सही, (सर्दारों के प्रति) हमारे वीर सर्दारो !

"सावधान सब लोग रहहु सब भांति सदाहीं ।
जागत ही सब रहैं रैन हूं सोवैं नाहीं ॥
कसे रहें कटि रात दिवस सब वीर हमारे ।
अस्व पीठ सों होहिं चारजामे जिनि न्यारे ॥
तोड़ा सुलगत रहैं चढ़े घोड़ा बंदूकन ।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं छन ॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर ।
आवहिं तो सनमुख चढ़ि कायर क्रूर सबै जुर ॥
दैहैं रन को स्वाद तुरन्तहिं तिनहि चखाई ।
जोपै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई ।

(धीरे धीरे परदा गिरता है ।)

तृतीय गर्भाङ्क ।

(स्थान अजमेर—शाही फ़ौज का ख़ेमा)

(शाहज़ादा सलीम, * मानसिंह और मुहब्बत ख़ां तथा और सेनापतिगण)

मानसिंह । (शाहज़ादे से) हम लोग दौड़ दौड़ा तो यहां तक पहुँचे अब हुजूर का क्या क़स्द है ?

* टाड साहब ने अपने राजस्थान में उदयपुर की लड़ाई में शाहज़ाद: सलीम का जाना लिखा है, परन्तु अब यह निश्चय हो गया कि शाहज़ाद: उस समय बहुत ही छोटा था और इस लड़ाई में नहीं भेजा गया था ।

सलीम। मेरी राय है कि अब यहां दो चार दिन आराम कर के तब आगे बढ़ा जाय।

मुहब्बतख़ाँ। ख़ुदावन्द ! तावेदार की राय नाक़िस में अब एक लहजः भी तवक़्क़ुफ़ करना मुनासिब नहीं, क्योंकि अगर दुश्मनों को ज़रा भी ख़बर हो जायगी तो फिर फ़तहयाबी मुश्किल हो जायगी, एकाएक जा गिरना चाहिए।

मानसिंह। ख़बर की आप क्या कहते हैं ? प्रतापसिंह कोई मामूली आदमी नहीं है। उसने जब सोते सिंह को छेड़ा है तब पहिले ही से बचने का भी उपाय किया ही होगा। जिस वक़्त उसके यहां से हम बिदा हुए उसी समय उसका दूत भी दिल्ली ख़बर लेने छूटा होगा, अब जितनी ही देर होगी उतनाही वह तैयार हो सकैगा।

सलीम। ख़बर ही होकर क्या होगी ? क्या उसकी फ़ौज हम से ज़ियादः है ?

मानसिंह। शाहज़ादे सलामत ! आपको कभी इनसे काम पड़ा होता तो हर्गिज़ ऐसा न फ़र्माते। उसकी फ़ौज हम लोगों की चौथाई भी न होगी मगर एक राजपूत दस आदमियों के लिये काफ़ी है—तिस पर मेवाड़ के राजपूत तो ग़जब के बहादुर होते हैं, ज़रा चित्तौर के जंग का हाल खां साहब से पूछें तब कैफ़ियत मालूम होगी।

मुहब्बतख़ां। इसमें कोई शुबहः नहीं—अगर वे लोग पहिले से ख़बरदार हो जांयगे हर्गिज़ फ़तह नसीब न होगी, चित्तौर पर बड़ी ही मुश्किलों से फ़तह नसीब हुई थी वह भी घर की फूट से।

सलीम । तो बिस्मिल्लाह कीजिए—सलीम आरामतलब नहीं है । आप लोग मेरी तरफ़ से इतमीनान रक्खें मैं तो महज़ आप लोगों के आराम के ख़ियाल से कहता था—मगर महाराज मानसिंह ! अगरचि राजपूत बड़े बहादुर हैं—मगर मुग़ल भी कोई ऐसे वैसे नहीं हैं । राजपूतों को घर बैठे लड़ना था मगर मुग़लों ने तो हज़ारों कोस से आकर हिन्द को फ़तह किया था, सलीम ने भी कमज़ोर हाथ से तलवार नहीं पकड़ी है और फिर हमारे साथ तो राजपूत कुलतिलक महाराज मानसिंह हैं।

मानसिंह । यह कौन कहता है कि मुग़ल बहादुर नहीं हैं । मगर खुदावन्द—अगर घर में नफ़ाक़ न होता तो ज़रा हिन्द को फ़तह करना मुश्किल था, ख़ैर—मेरी ग़रज़ सिर्फ़ यह है कि देर करने में बजुज़ नुक़सान के कोई फ़ायदा नहीं ।

सलीम । बेशक—तो आज ही कूच करना चाहिए ।

मानसिंह । (सेनापतियों के प्रति) बादशाह सलामत ने आप ही लोगों के भरोसे इस जंग को छेड़ा है और अपने लख़्ते जिगर शाहज़ादः सलीम को साथ दिया है । आप लोग ऐसी मुस्तैदी और बहादुरी के साथ उदयपुर पर धावा करें कि चलते ही दुश्मनों को हटा दें ।

एक सेनापति । हुज़ूर ! इसकी कैफ़ियत मैदान जंग में मालूम होगी, हम लोग तो जां निसार हैं । मगर मेरी अक़्ल नाक़िस में इधर से कोई शख़्स ऐसा जाना चाहिए कि जो वहां की भीतरी ख़बर भी ले और अगर मुमकिन हो तो उनमें से कुछ चीदः सरदारों को अपनी तरफ़ मिलावे ।

मुहब्बतखां। खूब-खूब-तुमने यह खूब सोचा मगर इस वक्त इस काम के लिये तुम से बढ़कर और कौन है ?

सेनापति। (मन में) "जो बोले सो घी को जाय" (प्रकाश) हालांकि फ़िद्वी किसी क़ाबिल नहीं, मगर तामील इर्शाद फ़र्ज़ समझ कर रज़ा चाहता है।

सलीम। शाबाश, आपही सा जमांमर्द मुस्तैद शख़्स तो ऐसा काम अंजाम दे सकता है, अच्छा अब आप अल्लाहो अकबर का नाम लेकर कूच कीजिए।

(सेनापति को पान देता है और वह सलाम करके जाता है।)

मानसिंह। (सेनापतियों के प्रति)

चलो चलो सब वीर बहादुर कमर कसो अब।
दिल्लीपति सेवा को अवसर फिर पैहो कब॥
निजप्रताप बल तुच्छ प्रताप प्रताप मिटाओ।
थापि आपनी थाप ताप निज अरिहिं तपाओ॥
चढ़ि शिखर उदयपुर महल के शाही ध्वज फहरावहीं।
जय नाद जु अकबर शाह की चारों ओर मचावहीं॥५॥

सब। आमीं-आमीं-आमीं। (पटाक्षेप।)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर-अन्तःपुर।)

(महाराणा और महाराणी।)

प्रतापसिंह। मानसिंह ने जो कुछ किया वह तुमने सुना ही।

महाराणी। महाराज ! मानसिंह का कौन दोष है ? आप ने जो सलूक उनके साथ किया उसके बदले वह और करते ही क्या ?

प्रताप। प्रिये ! तुम प्रतापसिंह की स्त्री होकर ऐसी बात

कहती हो ? मानसिंह को अपनी करतूत पर लज्जित होकर घर बैठना था, या एक अनुचित काम करके उसे ढाकने के लिये दूसरा घोरतर अनुचित काम करना था ? जब मान ही नहीं तो फिर मानसिंह क्या ? चाहे हम लोगों का हिन्दू धर्म भला हो या बुरा परन्तु जब तक हम हिन्दू धर्म अवलम्बन किए हैं उसके नियमों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। जहां हमारे धर्मानुसार हिन्दुओं ही में एक जाति दूसरी जाति का बनाया अन्न नहीं खाती, वहां विधर्मी मुसल्मानों को बेटी देना क्या कम लज्जा और घृणा की बात है? और फिर यदि उसने किसी कारण से ऐसा काम कर भी डाला था तो चुपचाप लज्जित हो कर उसके लिये पश्चात्ताप करना उचित था, या यह कि और भी बचे बचाए लोगों का धर्मनाश करना ? दो चार लड़ाइयों को जीत कर उसका मन बहुत ही बढ़ रहा था इसलिये मैं ऐसा न करता तो और क्या करता ? यदि वह यहां से भी अपने घृणास्पद काम के लिये कुछ शिक्षा न पाता तो संसार में और कहां पाता ? यह अधर्म भी तब धर्म ही समझा जाता, क्योंकि इस गद्दी की बड़ाई केवल हिन्दूगौरवरक्षा के कारण है। यदि हम ऐसा न करते तो इस कुल को कलंकित करते, दूसरे यह कि उसे इस बात का बड़ा अभिमान होता कि राणा मेरे भय से दब गया और उसने मेरे धर्म पर ढाकन डाक दिया, इसलिये, प्यारी ! मरना अच्छा—राज्यासन छोड़कर बन बन घूमना अच्छा, परन्तु अपयश और अधर्म का भागी होना नहीं अच्छा।

तरु छाया आसन सिला भीलन संग निवास ।
परम सुखद, पै धर्म तजि रुचत न राज विलास ॥

रानी । नाथ! हमारा अपराध छमा कीजिए, हम स्त्री जाति कहां तक समझ सकती हैं। हमारे लिये तो यह भाग्य की बात है कि आपकी सेवा का अधिक अवसर मिलेगा।

जल भरि सब थल स्वच्छ करि नाना पाक बनाय।
बड़ भागिनि जीवन करूँ अमित पलोटौं पाय ॥

प्रतापसिंह । शाबाश! यह बात तुम्हीं को शोभा देती है। भला, मानसिंह, भला, तुमने जो किया अच्छा किया इसका प्रतिफल तुम्हें दिए बिना विश्राम नहीं लेने का

जबलौं नहिं गढ़ ढाहि करि दासिन कौड़िन वेच।
करौं न दच्छिण कर असन सेज न पगिया पेच। *

---

* यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रतापसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयपुर का गढ़ अपने हाथ से ढहा कर दासियों को कौड़ी के मोल न बेच लूँगा न शय्या पर शयन करूँगा न सिर पर पाग रक्खूंगा और न दाहिने हाथ से भोजन करूंगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उस वंश वाले बराबर करते आते थे। जयपुर के महाराज रामसिंह ने सोचा कि क्षत्रियों की प्रतिज्ञा महा भयानक होती है, एक न एक दिन परिणाम बुरा होगा। इसलिये सन् १८७७ इसवी में जब श्रीमती भारतेश्वरी के प्रिय युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स भारत में आए थे उस समय महाराणा सज्जनसिंह और महाराज रामसिंह उनसे भेट करने बम्बई गए थे, तब महाराज रामसिंह आग्रह पूर्वक महाराणा साहिब को जयपुर लेगए। ज्यों ही किले के दरवाजे पर पहुंचे तोप में गोला भरा तैयार था। महाराज

(नेपथ्य में)

आलस निसि भइ भोर उदय होत रविकुल तरनि।
भागहु कायर चोर अब विलंब नहि नास मैं॥

रामसिंह ने महाराणा साहिब से बहुत आग्रह करके उसे उनके हाथ से दगवा कर दो चार कनगूरे गढ़ के ढहवा दिए और दो चार गोपियों (दासियों) को अपन हो मुसाहिबों के हाथ कौड़ियों मोल बिकवा दिया। इस भांति उनकी प्रतिज्ञा पूरी कराके उन्हें शय्या पर सुलाया और आप पगड़ी पहराई। यह किम्बदन्ती कहां तक ठीक है इसका निर्णय करने के लिये मैंने अपने मित्र कुंवर जोधसिंह (उदयपुर राज्य के सुयोग्य दीवान राय पन्नालाल बहादुर सी० आई० ई० के भ्रातृपुत्र) को लिखा था। उन्होंने जो उत्तर दिया है अविकल प्रकाशित किया जाता है। पाठकगण इससे इसकी अलीकता समझ सकेंगे।

"प्रताप नाटक आपने पद्मावती से भी अच्छा लिखा है। आपने जो प्रतापसिंह की जयपुर के लिये प्रतिज्ञा पूछी यह इधर प्रसिद्ध नहीं है और न मैंने भी किसी इतिहास में पढ़ी। श्री महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास जी निर्मित "वीरविनोद" नामक बृहत् इतिहास में महाराणा प्रतापसिंह जी के प्रकर्ण में इन प्रतिज्ञाओं का ज़िक्र नहीं है। यह बात भी निरी निर्मूल है कि रामसिंह जी ने महाराणा सज्जनसिंह से कोई प्रतिज्ञा पूरी करवाई थी। न जाने ऐसी निर्मूल गप्पे क्यों लोक में प्रसिद्ध हो जाती हैं। आपने टाड राजस्थान या मेरे ही छोटे इतिहास में पढ़ा होगा कि महाराणा अमरसिंह जी द्वितीय ने ही जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह जी को निज कन्या ब्याह दी

प्रतापसिंह । प्रिये, अब बिदा करो देखो कविराजा जी युद्ध आरम्भ करने की सूचना दे रहे हैं ।

रानी । (सहास्य) नाथ, आप सुख से पधारें परन्तु दासी को भूल न जाइएगा ।

(राजकुमार एक छोटी सी तलवार लिए दौड़ते हुए आते हैं)

थी और जयपुर से एक घर का सा व्यवहार होगया था। उसके उपरांत जयसिंह के पश्चात सवाई माधोसिंह जी उनके पुत्र और मेवाड़ के भानजे थे, गद्दी पर बैठे ।

हां, जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली श्री प्रतापसिंह जी के समय में कुंवर मानसिंह और भगवानदास का अलहदा अहलहदा तौर से श्री जी के पास आना व हल्दीघाटी की लड़ाई प्रसिद्ध घटना हुई थी। इसके सिवाय और भी कई घटनाएँ श्री प्रतापसिंह जी के समय की प्रसिद्ध हैं और इतिहास में भी कई सन्निवेशित की गई हैं वे कहां तक लिखी जाँय पर उनमें भी जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली तो दो ही हैं।

आप अपने नाटक को सुखान्त करोगे या दुःखान्त क्योंकि उनके पिछले आठ वर्षों में अकबर ने चढ़ाई फिर मेवाड़ पर न की थी और उनके पुत्र अमरसिंह जी के समय में अकबर के बाद तो जहांगीर ने ही अमरसिंह जी पर आप अजमेर में रह कर सेना भेजी थी । यदि दुःखान्त करोगे तो प्रतापसिंह जी के परलोक वास की घटना के सिवाय कोई दुखदायक वार्ता नहीं हुई । उनके परलोक करते समय का पश्चात्ताप तथा उपदेश बड़े वीरता के शब्दों से भरे थे ।

आज मेरे पत्र में जिन वीर पुरुषों का विशेष हाल है उन्हीं के लिये यहां जो दोहे प्रसिद्ध है उन्हें लिखता हूँ और अन्त में एक श्लोक

राजकुमार। (तलवार खोल कर) मा ! हम बादछाह के बेते का छिल इछी तलवार छे कात कल खेलने का गेंद बनावेंगे हमें भी दलबाल के छाथ जाने का हुकुम देव।

रानी। वत्स ! तुम अवश्य जाओ—पर लूट में जो गहना लाना वह हमीं को देना।

राजकुमार। हां हां, छब तुमको देंगे पल छिलपेच औल कलंगी तो हमही पहिलेंगे।

(सब लोग हँसते हैं।)

भी लिखता हूँ जो एक प्रतापसिंह जी के खोदित लिपि में मिला है जिसमें हलदीघाटी की लड़ाई का वृत्तान्त है। यदि उचित समझें तो इन दोहों को नाटक के टाइटल पर छपवा देवें।

सोरठा।

अकबर समद अथाह। सूरायण भरियो सलल ॥
मेवाड़ो तिण माह। पीयण फूल प्रताप सी ॥
अकबर घोर अन्धार। ऊघाणं हिन्दू अवर ॥
जागे जग दातार। पोहरं राण प्रताप सी ॥
अकबर एकण बार। दागल की सारी दुनी ॥
बिन दागल असवार। एकज राण प्रताप सी ॥

श्लोक।

कृत्वा करे खड्गलतां सुवल्लभां। प्रतापसिंह समुपागते प्रगे ॥
सा खण्डिता मानवती द्विषच्चमू। संकोचयंती चरणौ पराङ्मुखी ॥

ऐतिहासिक गलती।

यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हुई है कि हलदीघाटी की लड़ाई में अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहज़ादा। पर मानसिंह था और उसके संग शाही सैनिक अफसर भी थे।

(नेपथ्य में महाराज प्रतापसिंह की जय का कोलाहल होता है।)

प्रतापसिंह। (खड़े होकर) सेना लड़ने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही है। प्रिये ! अब जाता हूँ—देखें इस जन्म में फिर तुम्हारा चन्द्रानन देखने में आता है कि नहीं।

रानी। नाथ! हमारा आप का साथ क्या कभी छूट सकता है? भगवान् श्री एकलिंग जी बहुत ही शीघ्र विजयलक्ष्मी देंगे।

प्रतापसिंह। तथास्तु।

(प्रतापसिंह नंगी तलवार लिए आगे आगे, राजकुमार छोटी नंगी तलवार लिए पीछे पीछे मुड़ मुड़कर प्रेमपूर्वक रानी की ओर देखते हुए जाते हैं—रानी अतृप्त नेत्रों से देखती है।)

(पटाक्षेप।)

पञ्चम गर्भाङ्क।

(उदयपुर—मैदान।)

(महाराणा की सेना, घोड़े पर महाराणा, सरदारगण तथा कविराजा।)

कविराजा—

उमड़ी क्यों सुरबाला सब नभ मंडल मोहैं।
ह्वै व्याकुल क्यों लरत करन जयमाला सोहैं॥
कटकटाइ क्यों अरी जोगिनी धावत उत इत।
गिद्धराज मँड़रात व्यर्थ ही कलह करत कित॥
धरि धीर बैठि देखत न किन सबकी आसा पूरि है।
जब वीर प्रताप कृपाण लै शत्रुन के तन घूरिहै॥ १॥
कहा कहत ? मम प्यास राम रावण रण माहीं।
कौरव पाण्डव लरे बुंझी तब हूँ वह नाहीं॥

ताहि वुझावन हार कौन जग में है जायो।
हाय! न कोऊ अब लौं मेरो हृदय जुड़ायो॥
चुप लखत न क्यों रे बांवरे छिन ही मैं घबराइ है।
जब बाण गंग इत उमड़िहै तो पै पियो न जाइ है॥ २॥
अहो वीर क्यों करत विलम अवसर क्यों खोवत।
क्यों न शत्रु सिर गिरत बाट अब काकी जोवत॥
देखौ नभ मैं पुरुषे तुव गति की गति जोहत।
हिय उछाह आनन्दित मुख आतुरता सोहत॥
करि सिंहनाद हरि शत्रु हिय अपुने पांव बढ़ाइयै।
जय जयति मिवार प्रताप जय कहि अरि हृदय कँपाइयै॥ ३॥

(महाराणा प्रतापसिंह की जय, मेवार की जय आदि कोलाहल करते उत्साह के साथ सेना का नेपथ्य में गमन और दूसरी ओर से गुलाबसिंह का प्रवेश।)

गुलाव। प्रेम! तेरा इतना बड़ा साहस कि तू पाषाणवत कठोर वीर हृदय पर भी अपना अधिकार जमा लेता है? अरे जिस गुलाबसिंह ने कभी स्वप्न में भी शत्रु से पीछा न दिया होगा आज तैंने उसे डोर में बांध कर अपना बन्दी बना लिया? किधर से आया, कब आया और कैसे इस दृढ़ हृदय गढ़ में समाया कुछ जान भी न पड़ा कि भला मैं कुछ तो अपने जी की निकाल लेता, तुझे कुछ तो दिखला देता कि वीर हृदय पर चढ़ाई करने का फल क्या होता है? पर हाय! मैं अब क्या कर सकता हूं, अब तो तेरे फन्दे में फंस गया, हिल तो सकता ही नहीं बीरता क्या दिखलाऊं! हाय! देशभक्त वीर क्षत्रिय लोग वह देखो रणभूमि में पहुँच गए और मैं अभी यहीं खड़ा हूं! कुछ चिंता

नहीं । भाइयो ! मैं भी पहुंचा । गुलाबसिंह पीछे रहने वाला नहीं है । तुम्हारा साथ देगा; अब मुझे प्राण विसर्जन करने में तनिक भी आगा पीछा नहीं है । मैं अपनी प्रेम पुत्तलिका से अन्तिम बिदाई ले आया । अब उसके कोमल मुखकमल का ध्यान करते करते मैं निःसंकोच अपनी मातृभूमि के लिये प्राण खो सकूँगा । (कुछ ठहर कर इधर उधर टहलते हुए) प्राण ! क्यों घबराते हो ! क्यों, शत्रुहीन पृथ्वी करने के लिये व्याकुल हो रहे हो ? पृथ्वी में कौन है जो तुम्हारी चोट को सम्हाल सकेगा । जब तुम अकेले थे तब तो कोई तुम्हारा सामना कर ही नहीं सकता था और अब ? अब तुम्हारे साथ प्रेम के रहते कौन है जो तुम्हें जीत सके । अब तो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि" प्यारी मालती ! देखो अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रखना । देखो अभी तुम्हारा गुलाबसिंह तुम्हारी आज्ञा पालन करके आता है । अभी अपनी असीम साहसाग्नि में शत्रु दल भस्म कर तुम्हारा हृदयराज्य अधिकार करेगा अथवा तुम्हारे प्रेममय मुख का ध्यान करता करता अनंत सुख धाम की ओर प्रस्थान करेगा । पर याद रखना तुम्हारा चातक कभी दूसरे जल से तृप्त न होगा; तुम भी कृपा कर उसकी सुध न भुला देना ।

(नेपथ्य में कोलाहल)

(चौंक कर) जान पड़ता है लड़ाई आरम्भ हो गई । तो मैं भी पहुंचा—(उन्मत्त की भांति वीरदर्प के साथ जाता है ।)

———

षष्ठ गर्भाङ्क।

(स्थान—एक पहाड़ी बरसाती नदी का किनारा)

(नदी के एक किनारे पर चेतक घोड़े पर सवार प्रतापसिंह और पीछे पीछे घोड़े पर सवार सक्ता जी, दूसरी ओर दो मुग़ल सर्दार मुमुर्ष अवस्था में भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं।)

सक्ता जी। (राणा को ललकार कर) ओ नीले घोड़े के सवार!

राणा। (पीछे फिर कर सक्ता जी को देख घोड़े को रोक कर मन ही मन) आह! यह क्या सक्ता इस समय अपना वैर चुकाने आया है? अच्छा कुछ चिन्ता नहीं. उन नीच यवनों के हाथ से मरने की अपेक्षा पवित्र सिसोदिया कुल के हाथ से वीर गति पाना सहस्र गुण श्रेय है। (प्रकाश ललकार कर) रे क्षत्रिय कुलकलंक! आ हम तेरी प्रतिहिंसा वृत्ति चरितार्थ करने के लिये प्रस्तुत हैं।

सक्ता जी। (घोड़े से कूद कर राणा का पैर पकड़ कर) भैया प्रताप, वाक्यबाणों से हमारा हृदय मत वेधो। बहुत हुई; हम प्रतिहिंसा लेने नहीं आए हैं, हम अपराध मार्जना कराने आए हैं; भाई प्रताप एक वेर हृदय से कहो—सक्ता, हमने तेरा घोर अपराध क्षमा किया!

राणा। (सक्ता का हाथ थाम कर साश्रुनयन) भाई सक्ता, प्यारे भाई, हमने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया। क्या तुम भी हमारे अनुचित बर्तावों को अपने हृदय से भुला दोगे?

सक्ता। (रोते रोते) भैया, भैया, अब कुछ न कहो, अब नहीं सही जाती, हाय जिसने तुम्हारे जैसे वीर, देशहितैषी, उदार और प्रेमपूरित हृदय भाई के साथ शत्रुता की, क्या उससे बढ़कर नीच कोई संसार में हो सकता है,

उसके साथ जो वर्ताव किए जायँ थोड़े हैं।

राणा। (आंखों को पोंछ कर–बात फेर कर) हां यह तो बतलाओ तुम यहां इस कुसमय में कैसे आ गए?

सक्ता। (आंख पोंछते पोंछते) जब हमने देखा कि रणक्षेत्र से तुम इस ओर बढ़े और इन दोनों नीच अन्यायी यवनों ने तुम्हारा पीछा किया, हमसे न रहा गया, न जाने कैसा भ्रातृस्नेह हृदय में उमड़ा कि हमसे रुक न सका, हम भी पीछे हो लिए। जब तुम्हारा प्यारा चेतक तुम्हें लेकर तीर की भाँति नदी पार हो गया और वे दोनों नीच नदी हलने में हिचकिचाए हमने उन दोनों पर हमला किया और भैया प्रताप तुम्हारे चरणों के प्रताप से दोनों को मार गिराया, देखो वे दोनों पड़े छटपटा रहे हैं।

राणा। धन्य भाई सक्ता, धन्य, भाई मिलै तो तुम सा, आहा! सच कहा है "मिलै न जगत सहोदर भ्राता" आओ तुम्हें छाती से लगा हृदय शीतल करें (राणा ज्योंही रिकाब से पैर निकालते हैं चेतक पृथ्वी पर गिरता और छटपटाता है।)

राणा। (व्याकुल होकर) अरे यह क्या? अरे मेरे बहादुर प्राणदाता चेतक, हाय, क्या तू मुझे यहां अकेला ही छोड़ कर भागना चाहता है?

(दोनों भाई दौड़कर चेतक का ज़ीन आदि काट देते हैं। राणा दौड़कर नदी से अपनी पगड़ी भिगा कर जल लाते और चेतक के मुख में चुलाते हैं। सक्ता जी अपने डुपट्टे से हवा करते हैं। चेतक हांफता और एकटक राणा की ओर देखता आंसू बहाता है।)

राणा। (चेतक के मुख को गोद में लेकर मुख चूम कर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए) प्यारे घोड़े, मेरा विपत्ति स हचर

चेतक, तू ऐसा क्यों कर रहा है? अरे तू यहां मुझे किस-के भरोसे छोड़े जाता है? (आंखों से आंसू बहते हैं, चेतक जरा सा मुँह उठा कर धीमे शब्द से हिनहिनाता राणा की ओर देखता प्राण त्याग करता है, आंख खुली ही रह जाती है।) (प्रतापसिंह अत्यन्त करुणा स्वर से।)

विपति संघाती धीर, स्वामिभक्त सांचो सुहृद।
चल्यो होइ बेपीर, रे चेतक परताप तजि॥
सहे अनेकन घाय, चढ़ि सलीम गज सीस पै।
पीछो दियो न पाय, अब क्यों भाजत मोहिं तजि॥
रतन अमोलक तौल, सहस गुनों जो वारिये।
तौहू लहै न मोल, रे चेतक तुव सामुहै॥
करिके ऋनिया मोंहि, हा हा चेतक चलि बस्यो।
सहि नहिं सकत बिछोह, अब जीवन लागत वृथा॥

सक्ता जी। (सांत्वना देकर) भैया, तुम धीर वीर होकर ऐसे अधीर होते हो? चेतक ने अपना काम किया, प्राण दिया पर अपने कर्तव्य से विमुख न हुआ, और क्या प्रतापसिंह आज मोह के वशीभूत होकर निज कर्तव्य को भूल रहे हैं? सारी हिन्दू जाति इस समय एक तुम्हारा मुख देख रही है—उठो देर न करो। मेरे इस घोड़े पर चढ़ कर किसी सुरक्षित स्थान पर जा कर अपने इन घावों की दवा करो, मेरे लिये कुछ चिन्ता न करना, मैं उन दोनों मुग़लों के घोड़ों में से एक को लेकर अभी मुग़ल शिबिर में जाकर उनकी ख़बर लेता हूं।

(प्रताप के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सक्ता का तीर की भांति प्रस्थान और प्रतापसिंह का भौंचक से हो कर इधर उधर देखते रह जाना।)

(पटाक्षेप)

षष्ठ अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

(दिल्ली—शाही महल)

(अकबर और पृथ्वीराज।)

अकबर। अब तक उदयपुर की कोई ख़बर न मिली, तबीयत निहायत परेशान है।

पृथ्वीराज। हुजूर, राणा प्रतापसिंह को परास्त करना कोई हँसी खेल नहीं है, फ़ौज इसी तरद्दुद में होगी, इसी से कोई ख़बर नहीं आई। पर मेरी समझ में ऐसे खतरे की जगह शाहज़ादा सलीम को भेजना कुछ अच्छा नहीं हुआ।

अकबर। राजा साहब, यह आप क्या फ़र्माते हैं ? अकबर ऐसा बुज़दिल नहीं है जो बमुक़ाबिल जंग अपनी या अपने औलाद की जान को अज़ीज़ समझे—अगर मैदाने जंग में बहादुरी के साथ मेरा फ़र्ज़न्द काम आवै तो मैं समझूँगा कि वह अपने हक़ को अदा कर गया और अपने तईं उसका वालिद होना फ़ख़् मानूँगा। देखिए बचपन से मैंने जिस क़दर तकलीफ़ें उठाईं और जैसे ख़तरों में अपने तईं डाला अगर उनसे ख़ौफ़ खाता तो हर्गिज़ आज यह दिन नसीब न होता।

(नेपथ्य में)

जय प्रताप तुव शाह विजय लक्ष्मी चेरी सी।
हाथ बांधि मनु करत रहत चहुं दिसि फेरी सी॥
जो हतभागी परत आइ तुव कोप ज्वाल मैं।
भस्म होत छिन माहिं पिसत सौ काल गाल मैं॥

मेवार छार जय हार लै फ़तेह मुबारक मुख कहत।
युवराज सलीम उमङ्ग सों तुव पद चूमन अब चहत॥

पृथ्वीराज। (मन में) देता तो है बादशाह को विजय की मुबारिकबादी, परन्तु पहिले ही मुख से "जय प्रताप" निकला। मा दुर्गे, तेरी शरण—

(शाहज़ादा सलीम का प्रवेश।)

सलीम। (बादशाह के पैरों पर गिरता है और बादशाह उठा कर छाती से लगाता है) जहांपनाह को आज फ़तहेहिन्द मुबारक हो।

अकबर। (फिर सलीम को छाती से लगाकर) जिसे तुम्हारा सा फ़र्ज़न्द खुदावन्द तआला ने दिया हो उसके लिये ऐसी ऐसी फ़तहयाबी क्या हक़ीक़त है? मगर यह तो कहो आज फ़तहेहिन्द के क्या मानी? क्या अब तक हिन्द फ़तेह होने को बाक़ी था?

सलीम। खुदावन्द—बन्दगाने आली ने गो कि सारे हिन्द पर फ़तेहयाबी हासिल कर ली मगर जब तक इस छोटे से टुकड़े मेवार पर फ़तेह न हासिल हो, तब तक हिन्दुओं की नज़र में हिन्द फ़तेह नहीं हुआ। राणा को लोग हिन्दूपति कहते हैं।

अकबर। तुम अभी फ़तेह की मुबारकबादी दे न रहे थे।

सलीम! ज़रूर-बप्क़बाले आली हमलोग फ़तेहयाब तो ज़रूर हुए मगर यह फ़तेह नहीं के शुमार में है।

अकबर। क्यों—क्यों—

सलीम। खुदावन्द! मैं शुरू से कैफ़ियत अर्ज़ करता हूं। हम लोगों ने जाते ही अजमेर से सिपहसालार जवांमर्दख़ां को ख़बर लेने और दुश्मनों के चन्द लोगों को क़ाबू में

लाने की कोशिश के लिये भेजा, मगर ख़बर लाना और किसी को क़ाबू में लाना तो दूर किनार; वह हज़रत खुद दुश्मनों के क़ाबू में आ गए और डाढ़ी मूंछ मुड़ा क़लंन्दर की सूरत बना कर प्रताप की तर्फ़ से बतौर तुहफ़ः हमलोगों के सामने पेश किए गए। एक तो तमाम फ़ौज मुस्तैद थी ही दूसरे उसकी इस हरकत से सबके सब ग़ज़ब में आगए और हमलोगों ने बड़े ज़ोर शोरसे चढ़ाई कर दी-फिर मैं क्या अर्ज़ करूं, वाह रे बहादुराने राजपुताना ! जिस वक़्त वे लोग भूखे शेर की तरह हमारी फ़ौज पर टूट पड़े कुछ अक़्ल काम न करती थी। वह मुट्ठी भर राज़पूत हमारी बेशुमार फ़ौज को आन की आन में मूली की तरह काट कर रख देते थे। हमारे कैसे कैसे सर्दार इस जङ्ग में काम आए हैं कि तावेदार कुछ गुज़ारिश नहीं कर सकता और उन लोगों के लिये तो मरना कोई बात ही न थी। ग्वालियर के राजा रामसिंह का इकलौता कुँवर खण्डेराव बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया, मगर रामसिंह को उसकी कुछ भी परवा न थी, गोया बारूद में पलीता लगा दिया गया। फिर किस तरह पर जान छोड़ कर वह लड़ा है कि फ़िद्वी अर्ज़ नहीं कर सकता।

अकबर। शाबाश बहादुर रामसिंह, शाबाश ! हां फिर—

सलीम। मैं अपनी फ़ौज के घेरे में हाथी पर अम्मारी में सवार था-देखता क्या हूं कि खुद प्रताप, देव की सूरत हाथ में भाला चमकाता घोड़ा फेंक कर हाथी पर पहुँचा और एकही हाथ में महावत को मार गिराया। उस वक्त बिजली की तरह कड़क कर उसने मुझसे जो

कुछ कहा वह अब तक मेरे दिल में कड़क उठता है।

अकबर। (जोश में आकर खड़ा हो जाता है) क्या कहा ?

सलीम। हुज़ूर। कहा कि "अरे लड़के ! तैं क्या ज़नानख़ाने में बैठकर लड़ाई की बहार देखने आया है ? क्यों नहीं मैदान में निकलता ? ख़ैर, तुझे लड़का समझ कर छोड़ देता हूँ, मगर ले यहां का निशान लेता जा" इतना कह कर अम्मारी पर एक ऐसा भाला मारा कि अगला खम्भा पाश पाश हो गया।

अकबर। (घबरा कर) फिर–फिर—

सलीम। इतने में तो नीचे से हमारे बहादुर सरदारों ने गोलियों की झड़ी बाँध दी। प्रताप को सात घाव लगे, बहादुर घोड़े को भी गोली लगी, दोनों नीचे आए–फिर तो वह ख़ौफ़नाक जङ्ग हुआ कि जिसका बयान नहीं। इस जङ्ग में प्रताप का तो काम तमाम हो चुका था क्योंकि प्रताप अकेला ही मेरी फ़ौज में आ कूदा था और वह चौतरफ़ से घिर गया था मगर वाहरे निमक हलाल झाला राजा मानसिंह ! यह तुम्हारा ही काम था। ख़ुदावन्द, वह बिजली की तरह बादल के मानिन्द फ़ौज को चीरता हुआ पहुँचा और राणा को हटा कर आप राणा की जगह खड़ा हो गया और राणा के धोखे आप मेरे सिपाहियों के हाथ जां बहक़ हुआ मगर अपने मालिक को बचाया।

पृथ्वीराज। (मन में) धन्य झाला राजा धन्य, तुम्हारा जन्म सुफल हुआ।

अकबर। फिर प्रतापसिंह का क्या हुआ ?

सलीम। हुज़ूर। मेरे सिपाह तो यह समझ कर कि प्रताप

मारा गया ख़ुशी के मारे मरने लगे और झाला राजा के सिपाह बिजली के मानिन्द राणा को लेकर निकल गए।

अकबर। वाह रे बहादुराने राजपूताना, वाह ! क्यों न हो यह उन्हीं के हिस्से है-हां फिर क्या हुआ ?

सलीम। हमारे दो वहादुर सरदारों ने प्रताप का पीछा किया और करीब था प्रताप को मार लेते क्योंकि प्रताप तो मजरूह था ही लेकिन उसके वहादुर और वफ़ादार घोड़े चेतक ने बावजूदे कि निहायत ही ज़ख़मी था ऐसी वफ़ादारी की जो इन्सान से नामुमकिन है; और अपने मालिक को बचा लिया। दर्मियान में एक बर- साती नदी आ गई। हमारे सरदार जब तक उसके क़रीव पहुंचे चेतक राना को लेकर तीर के मानिन्द पार हो गया, मुग़ल सरदार नदी उतरने की कोशिश ही में थे कि राणा के भाई सक्ता जी ने जिसके साथ हुज़ूर ने इतने इहसान किए थे उन दोनों पर हमला किया और दोनों को मार गिराया।

अकबर। (क्रोध पूर्वक) सक्ता से यह दग़ाबाज़ी ? तुमने उसे क्या सज़ा दी ?

सलीम। खुदावन्द, उसने मुझसे जां बख्शी का क़ौल लेकर कुल सहीह हाल कह दिया इसलिये मैंने उसे मुवाफ़ कर दिया मगर उसे और उसके कुल सक्तावंशी सरदारों को शाही मुलाज़िमत से अलाहदः कर दिया।

अकबर। खूब किया, इस जङ्ग में कितने राजपूत खेत रहे?

सलीम। बाईस हज़ार फ़ौज लेकर राना ने चढ़ाई की थी जिनमें से सिर्फ़ आठ हज़ार जीते फिरे।

अकबर। शाबाश-हां फिर क्या हुआ ?

सलीम। फिर हम लोग फ़तह का डङ्का बजाते शहर में दाख़िल हुए मगर वहां धरा क्या था। सारा शहर वीरान, जङ्गल हो रहा है कहीं किसी का पता नहीं, कुछ भी हाथ न आया और उसी जङ्गलिस्तान में हमारी फ़ौज पड़ी है। बक़ौल शख़्से कि "बकुला मारे पंख हाथ।"

अकबर। शहर की यह हालत क्यों हुई ?

सलीम। सुना गया है कि बरसों पहिले से प्रताप ने सारी बस्तियों को उजाड़ कर दिया था ताकि दुश्मन अगर फ़तेहयाब भी हों तो कुछ न पाएं। तमाम बाशिन्दगान को जङ्गल और पहाड़ों में रहने का हुक्म था और ख़ुद कभी कभी आकर तहक़ीक़ात करता था कि उसके हुक्म की तामील हुई या नहीं। एक चरवाहा एक सबज़ः में अपनी भेंड़ चराता पाया गया-फ़ौरन उसे फांसी लटकवा दिया। इस सख़्ती के साथ उसने मेवाड़ ऐसे ख़ुशनुमा मुल्क को जङ्गल बना दिया है।

अकबर। आफ़रीं है इस दूरन्देशी पर, मगर तुम लोगों ने जङ्गलों में क्यों नहीं उसका पीछा किया ?

सलीम। जहांपनाह! एक तो उस पहाड़ी जङ्गल में हम लोगों का नावाक़फ़ियत की हालत में घुसना नामुनासिब, दूसरे मौसिमे बरसात शुरू, इस वक़्त तो नामुमकिन ही था।

अकबर। कुछ मुज़ायक़ः नहीं, बाद बरसात सही। मुझे मुल्क मेवाड़ की फ़तेह से सोमोज़र की ख़्वाहिश नहीं; मुल्क-गीरी की ख़्वाहिश नहीं, सिर्फ़ बातों की आन है। मगर देखना ख़बरदार जिसमें प्रताप ऐसा बहादुर शख़्स मारा न जाय, ज़िन्दः गिरफ़्तार हो। आहा! क्या ऐसा बहादुर भी रूए ज़मीन पर मौजूद है ? अकबर,

तू खुशनसीब है कि तुझे ऐसा दुश्मन मिला।

पृथ्वीराज। (मन में) आहा !

साधु सराहैं साधुता जती जोगिता जान।
रहिमन सांचे सूर की वैरिहु करैं बखान॥

(पटाक्षेप।)

द्वितीय गर्भाङ्क।

(मेवाड़-जंगल-गिरि गुहा का बाहरी प्रान्त।)

(एक पत्थर की चट्टान को काट छांट कर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राणा जी विराजमान, ताड़ के पत्तों का छत्र लगा, चँवर होता, नकीब चोबदार आदि खड़े सरदारगण यथा यथा स्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे सिर पर लाल पाग मोर का पंख खोसे हाथ में धनुष बान लिए।)

कविराज—:

दिन दिन बढ़ै प्रताप प्रताप प्रताप ईस के।
होइ नास जम पास वास सब यवन कीस के॥
फिर मिवार सुखसार गरैं जयमाल विराजैं।
देव रविन यह अवनि यवनि बिनु सब दिन छाजै॥
हे देव दमन अशरन शरन अब न विलम मन में धरहु।
करि कृपा आर्य गौरव बहुरि थापि दुःख दारिद हरहु॥

प्रतापसिंह। मेरे प्यारे भाइयो ! मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है। आहा ! कहां तुम लोग राज प्रसाद के रहनेवाले, राजसुख से सुखी और कहां कंटकमय, मरु देश, पहाड़ों का घूमना, चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छन्दता की नींद नहीं। एक स्थान पर

जम कर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाते पर यहां इसका भी ठिकाना नहीं। आज यहां हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहां कितने कोसों पर जङ्गल काट कर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा-कल कैसा ? यह भी तो स्थिर नहीं कि खाया यहां है तो हाथ कहां चलकर धोना होगा ? अहा ! जहां हजारों को भोजन देकर भोजन करते थे वहां अब अपने और अपने बच्चों के पेट भरने के लिये लालायित होना पड़ता है। अहा ! बहादुर भाइयो ! जो तुमने भी आज यवन बादशाहों की गुलामी स्वीकार की होती तो इन शिलाखण्डों के बदले रत्नजटित सिंहासनों पर विराजमान होते, बड़े बड़े अभिमानी नरेश तुम्हारे चरणों पर अपने मुकुट छुलाते, संसार की यावत सुख सामग्री तुम्हारे आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती और जो कहीं बादशाही महलों में अपनी बहिनों को पहुंचाए होते तब तो फिर कहना ही क्या था, सालों से बढ़ कर किसका आदर होता है ? जहां दिल्ली पहुंचते कि फिर तुम्हीं तुम दिखाई देते। पर हाय ! मैं क्या करूं, मेरी मोटी बुद्धि इन क्षणिक सुखों को सुख कह कर नहीं मानती। मैं गँवार आदमी, मुझे यह जंगल का वास उन शाही महलों से कहीं बढ़कर सुखद जान पड़ता है। आहा ! हमारा हृदय मन्दिर जो पवित्र आर्यगौरव वासना से पूरित है इन बाहरी शोभाओं से मोहित नहीं होता। मैं क्या करूं मेरा मन उन सुखद सामग्रियों को दुःखद करके मानता है परन्तु तुम लोग क्यों मेरे लिये कष्ट उठाते हो ? अपने जीवन को

क्यों व्यर्थ गंवाते हो? मुझे यहीं योंही भटकने दो, तुम लोग अपने कामों को देखो न? हम तुम लोगों को सुखी देख कर सन्तुष्ट होंगे।

एक क्षत्रिय। (क्रोधपूर्वक तलवार को राणा के सामने फेंककर) महाराज! यह लीजिए। जिस तलवार को हमने शत्रुओं के सिर जुदा करने के लिये बहुत दिनों से तेज़ कर रक्खा था, आज उसी से हम लोगों का सिर अपने हाथ से जुदा कर दीजिए, जो तलवार शत्रुओं के रक्तपान की प्यासी, देखिए मा दुर्गा की जीभ की भांति लपलपा रही है, उसकी प्यास को हम्ही लोगों के रुधिर से बुझाइए। पर महाराज, इन हृदयवेधी वाक्यबाणों का प्रयोग न कीजिए, जो स्वाधीनता का स्वर्गीय सुख हम लोग यहां भोग रहे हैं क्या कभी बड़े से बड़े पराश्रित राजसिंहासन पर बैठने से भी वह सुख प्राप्त हो सकता है? छि! मरना तो एक दिन हई है पर क्या उसके भय से आज ही हम अपने को बेच दें? क्या दासत्व स्वीकार करने से हमारा मृत्यु भय जाता रहेगा फिर महाराज! जब मरना ही है तो मान खो कर मरने से क्या?

"अहमद मोहि न सुहाय, अमिय पिलावत मान बिनु।
जो विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥"

भीलराज। सुणो राणाजी! हम लोगों के पुरखों ने जान दे कर इस राज का मान बचाया है हम लोगों के जीते जी कभी यह न होने पावेगा। दूसरे की कौन कहे आप भी चाहें तो हमारी स्वाधीनता को नहीं बेच सकते आपका जी चाहे तो जाकर बादशाह से सुलह कर

लीजिए पर हम भील लोग तो प्रान रहते कभी सिवाय हिन्दूपति के दूसरे किसी की गुलामी नहीं करने के।

प्रतापसिंह । धन्य आर्य वीर, धन्य ! हम तुम लोगों से ऐसे ही उत्तर की आशा रखते थे, तुम लोगों के ऐसे वीरों के सहायक रहते हमें पूरा विश्वास है कि हमारी स्वाधीनता को कभी कोई छू भी न सकेगा।

मान रहै तौ प्रान, मानहीन जीवन वृथा।
राखौ दृढ़ करि मान, जौ जीवन चाहौ सुखद ॥

(रसोईदार का प्रवेश)

रसोइया । अन्नदाता, कांसा * तयार है।

प्रताप । लाओ, यहीं ले आओ—

(रसोइया एक पत्थर के बड़े थाल में कुछ वन्य फल तथा बहुत से पत्ते के दोनों में उबाले हुए शाक और वृक्षों की जड़ रख कर लाता है, स्वयं राणा तथा सब क्षत्रिय सरदार एक ही थाल में बैठते हैं।)

(नेपथ्य में गान)

जो पै मिलै तीन दिन बीते।
कन्द मूल फल शाक उबाले अनायास सुखहीते ॥
विना निहोरे, बिनु सेवकाई, सुख स्वतंत्रता साने।
तो उनपै जग की सब सम्पति वारि सुधा सम माने ॥
राज साज, पकवान रसीले, धन सम्पत्ति बड़ाई।
सबही तुच्छ, तुच्छतम निश्चय निज मर्याद गंवाई ॥
बन रजधानी, महल गिरि गुहा, फूल आभरन सोहैं।
धर्म हेतु दुख सहत सुखी ते देव बधू लखि मोहैं ॥

* कांसा—राजाओं के यहां भोजन के थाल को कांसा कहते हैं।

(ज्योंही सब लोग ग्रास उठाते हैं त्योंही एक सैनिक घबराया हुआ आता है)

सैनिक । (हाथ जोड़कर) घणीखमा, अन्नदाता जी बड़ी भारी मुसलमान सेना इधर को उमड़ी चली आ रही है ।

प्रताप । (भोजन छोड़ दर्प के साथ खड़े हो और तलवार खींच कर) कितनी दूर है ?

सैनिक । धर्मावतार ! अभी आध कोस पर होगी ।

प्रताप । कुछ चिन्ता नहीं, बहादुर सरदारो ! आप लोग दुखी न हों; अभी तो पांच ही बेर परोसी थाल छोड़नी पड़ी है जो सौ बेर भी छोड़नी पड़ै तो क्या चिन्ता है! अब इस स्थान को अभी छोड़ देना चाहिए। रामसिंह, आप स्त्रियों को लेकर जंगली रास्ते से आगे बढ़ैं, हम लोग पीछे पीछे आते हैं, यदि शत्रु पास पहुँच भी जांयगे तो हम लोग थोड़ी देर तक अटका रक्खेंगे, तब तक आप स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दीजियेगा ।

(नेपथ्य में)

धन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि ।
सहत दुसह संताप, पै न तजत निज धर्म हठ ॥ १ ॥

(एक ओर से प्रतापसिंह तथा सरदारों का और दूसरी ओर से रामसिंह का वेग से जाना ।)

तृतीय गर्भाङ्क ।

(स्थान—जंगली कुंज—एक स्वच्छ शिलाखंड ।)

(मालती और गुलाबसिंह)

गुलाब । प्यारी मालती ! तुम हमारे कारन बड़े दुःख उठा रही हो ? आहा ! यह सुकुमार अंग और यह कठिन तापस व्रत!

मालती। देखो जी, तुम हमें बार बार लजाया न करौ, भला मैंने ऐसा क्या किया है जो तुम सदा ऐसा ही कहा करते हो ? धन्य तो है तुम्हारा यह असीम साहस !

गुलाब। हमारा साहस ? हमारा साहस भी क्या अपने मन से है ? उसकी जड़ भी तो तुम्हीं हौ।

मालती। चलो, चलो रहने दो बहुत बातें न बनाओ। देखो हमने यह जंगली फूलों की एक माला बनाई है, लाओ तुम्हें पहिरावें; देखें कैसी लगती है।

गुलाब। (अलग खड़े होकर) नहीं–नहीं–मालती ! अभी नहीं

जब लौं निज बल को फल इनकों नाहिं चखाऊं।
म्लेच्छ ध्वजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊं॥
आर्य धर्म की जय ध्वनि सौं सब जगत कपांऊं।
निस्कंटक मेवार देश जब लौं न बनाऊं॥
तब लौं मुख करि सामुहे तुम सौं कबहुं न भाखिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहिं अभिलाषिहौं॥

(नेपथ्य में)

वीर हृदय जौ कछु कहै फबै सबै तेहि सांच।
पै न फबै सुख बिलसिवो जब लौं बुझै न आंच॥

गुलाब। (धीरे से, दांत के नीचे जीभ दाब कर) अरे कवि-राज जी को हम लोगों का यहां रहना कैसे विदित हो गया ! देखो कैसी चितावनी दे रहे हैं ? अच्छा प्यारी मालती ! अब बिदा दो, मुझे छद्म वेष करके उदयपुर जाना है, क्योंकि बरसात आ गई, देखूं मुसल्मानी सेना क्या कर रही है।

मालती। हां, इसमें देर न करना चाहिए, मा दुर्गा सदा तुम्हारी रक्षा करें।

(गुलाबसिंह धीरे धीरे सतृष्णनेत्र मालती की ओर मुड़ मुड़कर देखते हुए जाते हैं ।)

मालती । धन्य गुलाबसिंह धन्य ! यह तुम्हारा ही काम है। इस कठिन परीक्षा में ठहरना सहज नहीं है । हाय ! मुझ अभागिन के कारन तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं । पर मालती ! तू भी धन्य है जो तूने अपना हृदय ऐसे वीर हृदय को सौंपा है । (आंखों में आंसू डबडबा आते हैं) आहा ! कितने साध से यह बनैले फूलों की माला गाँथी थी पर हाय ! एक क्षण भी मैं इसे उनके गले में पहिरा कर अपनी आंखों को ठंढी न कर सकी तो चलें अब इसे मा विपत्तिविदारिनी ही के चरणों में अर्पण करके उनकी मंगल प्रार्थना करें। (चौंक कर) और क्या उन्हें इस विपत्ति में अकेले ही जाने देना चाहिए? नहीं नहीं मैं भी चुपचाप उनके पीछे पीछे भेष बदल कर चलूं ।

(नेपथ्य में)

धन्य देश मेवार वारिये तुम पैं सब जग ।
जहं फूले ये फूल किये सौरभ मय सब मग ॥
धन्य वीर परताप थाप तुव न्याय विराजै ।
जासु सहायक ऐसे तिन्हें अकर कहा काजै ॥
रे कवि तुव जन्म सुफल भयो करि सेवकाई वीर की ।
धन वाणी कहि विरुदावली धर्म धुरंधर धीर की ॥ १ ॥

(मालती का प्रस्थान ।)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान—जंगली प्रांत, राजकुमार, राजकुमारी, भील बालक बालिका तथा राजपूत बालक।)

(राजकुमार के सिर पर फूलों की कलगी तुर्रा और गले में जंगली फूलों के हार—राजकुमारी के सब अंगों में फूलों का श्रृंगार—कुमार पत्थर के शिलाखंड पर बैठे हैं दो भील बालक बांस के मोटे मोटे लट्ठों के आसा बनाकर आगे खड़े हैं एक ताड़ का छाता राजछत्र के बदले में लिए पीछे खड़ा है)

एक चोबदार (आगे बढ़कर) घणीखमा अन्नदाता, दिल्ली से पाच्छाह का एक दूत आया है।

कुमार। (बेपर्वाई से) आने दो।

(सन को रंग कर कृत्रिम डाढ़ी लगाए एक दूत का प्रवेश।)

दूत। (सलाम करके) हजूर, हमको दिल्ली के पाच्छाह छलामत भेजा है।

कुमार। (टेढ़ी दृष्टि से देख कर) अच्छा, तुम्हारा पाच्छा क्या बोला?

दूत। पाच्छा बोला है कि आप हमसे क्यों लड़ाई करता है। इसमें बर नहीं आवेगा इससे हम जो चाहा था उसके करने से हम आपको सब से बड़ा मनसब देगा?

कुमार। (बड़े ही क्रोध से) कोई है इस बेअदब बेतमीज़ को मुँह काला करके हमारे शहर से निकाल देव।

(चारों ओर से सब लड़के "जो हुकुम" "जो हुकुम" कर के कूदते ताली बजाते इकट्ठे हो जाते हैं और दूत को मारते घसीटते नाचते कूदते ले जाते हैं। दूत दोहाई दोहाई पुकारता जाता है।)

कुमार। कोई है? सेनापति को बुलाओ।

एक चोबदार । जो हुकुम अन्नदाता ।

(जाता है और सेनापति को लाता है । सेनापति चिथड़े का परतला, सिर में लाल कपड़े की पट्टी बांधे कमर में तलवार लटकती आकर प्रणाम करके अदब से खड़ा होता है ।)

कुमार । देखो सेनापति; डिल्ली का पाच्छा अब बड़ी बेअदबी करने लगा उस पर फ़ौज लेकर अभी चढ़ाई करो !

सेनापति । जो हुकुम अन्नदाता –

(ताड़ की पोपली बिगुल की तरह बजाता है । चारों ओर से कूद कूद सब लड़के इकट्ठे हो जाते हैं और एक ओर राजपूत बालक और दूसरी ओर भील बालक श्रेणीबद्ध होकर फ़ौज की नाईं खड़े हो जाते हैं । सेनापति सबों से क़वायत कराता है और कुमार की सलामी उतरवा कर आगे आगे सेनापति पीछे पीछे श्रेणीबद्ध सेना जाती है ।)

राजकुमारी । (बालिकाओं के प्रति) । अरी तुम सब खड़ी मुँह क्या देख रही हो. जब तक फ़ौज डिल्ली जीत कर आवे तुम सब दर्बार के आगे नाचो गाओ । (सब लड़कियां मंडप बांध कर नाचती गाती हैं ।)

जियो जियो मेवाड़ना महाराजा—जियो—
मेवाड़ना महाराजा, मेवाड़ना महाराजा ।
जियो जियो ।
राजपूत कुल ना रखवारा भारत ना सिरताजा ।
जियो जियो ।
लाओ लाओ सइयो, चुनि चुनि कलियां,
रंग रंग अभरन काजा ।
अपणा धणी ने रचि पहिरावां मंगल रूप बिराजा ।
जियो जियो ।

("एक लिङ्ग जी की जय" "मेवाड़ की जय" "रानी की जय" इत्यादि कोलाहल करते नाचते कूदते लड़कों की सेना का प्रवेश।)

(सब नाचते और गाते हैं)

" सीपाहियां नो कलो बनती आवेरे महाराजा।
आवी लागी दरवा पेले काठे रे महाराजा।
नीला पीला तंबुड़ा खींचावोरे महाराजा।
रूपा केरी खूटा धमकावो रे महाराजा॥
सोना केरी डोरें बिछावो रे महाराजा।
गोड़ीला बलाओ रावली पाएगा रे महाराजा॥
गोड़ीला छुड़ाओ हरआ मुँगेरे महाराजा।
हाथीड़ा नीरांवो छूटा सुरमा रे महाराजा॥
ऊठोआं ने नाखो कड़वा नीवं रे महाराजा।
सरदारा ने देवो चावल चोखा रे महाराजा॥
सीपाआने देवो तोल मां भाता रे महाराजा।
फोजां में तो बतरी बाजा बाजे रे महाराजा॥
बाजारे बाजे भवाआं नाचेरे महाराजा।* "

सेनापति। (आगे बढ़कर कुमार को सलाम करके) घणी खमा अन्नदाता, डिल्ली की फ़तह मोमारक।

कुमार। (प्रसन्नता पूर्वक) साबास, साबास, डिल्ली फ़तह कर आए! पाच्छा क्या हुआ?

सेनापति। धर्मावतार, पाच्छा श्री जी हुजूर की डर से आगरे भाग गया।

कुमार। कुछ पर्वा नहीं, भागने वाले को भागने दो।

---

* यह भीलों की गीत मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता द्वारा प्राप्त हुई है।

एक भील बालक । (आगे बढ़ कर) अब हम दर्बार को तिलक करेंगे ।

एक राजपूत बालक । (आगे बढ़ कर) नहीं नहीं, तुम मेवाड़ की गद्दी का तिलक नहीं कर सकते हो, डिल्ली के फ़तह का तिलक हम करेंगे, हम भाई वेटे हैं । (दोनों आपस में द्वंद्व युद्ध करते हैं । कुमार दोनों को छुड़ाते हैं ।

कुमार । (राजपूत बालक से) सुनो भाई, आपस में लड़ते क्यों हो; तुम तो हमारे अंग ही हो, हमको तिलक हुआ तो तुमको हुआ । पर तिलक करने का अधिकार बहादुर भील सरदारों ही को है ।

(भील बालक "जय हिन्दू पति की" कहते और तिलक करते हैं । सब लोग नज़र में फल फूल, दही आदि पेश करते हैं और कुमार किसी को "पंच हज़ारी" किसी को 'सेह हज़ारी' किसी को 'हज़ारी' आदि पदवी वितरण करते हैं।)

(पटाक्षेप)

पञ्चम गर्भाङ्क ।

(स्थान—उदयपुर किले का एक भाग ।)

(पांच चार मुसल्मानों की गोष्ठी ।)

(कोई शराब के प्याले ढाल रहा है और कोई अफ़ीम घोल रहा है ।)

एक । (अफ़ीम घोलते घोलते) अजी हज़रत, अजब मनहूस जगह है—न कोई सैरगाह, न कोई दिल्लगी का शग़ल जी घबरा गया—लाहौल वला क़ूवत ।

दूसरा । (शराब के झोंक में) और क्या जनाब, जहन्नुम है, जहन्नुम—न मालूम क्या क़िस्मत फटी कि इस जंगलिस्तान में आ फंसे ।

तीसरा। (मोछों पर ताव फेरते हुए) हज़रत् मेरी भी इतनी उम्र हुई, सैकड़ों ही जङ्ग इन्हीं हाथों फ़तह किए मगर जनाव, यह मायूसी, यह कोरा कोरा रहना तो कहीं भी नसीब न हुआ, एक फूटी कौड़ी भी हाथ न आई।

चौथा। भला यह तो फ़र्माइये, बी इलाहीजान से वड़े वड़े वादे कर आए थे—मीरसाहब अब उन्हें क्या मुँह दिखायेगा?

मीरसाहव। (रोना सा मुँह वना कर) जनाव कुछ न पूछिये मेरी तो इसी फ़िक्र में रूह फ़िना हुई जाती है—यार जो कहीं वहां ख़ाली हाथों गए तो वह वे भाव की पड़ेगी कि सर में एक वाल भी न रहने पावेगा।

ख़ां साहब। भाई, बन्दःदर्गाह तो घर में सैंद लगाएगा, वीवी साहवा की नथ तक बेचेगा मगर जनाब वहां झूठा नहीं वनने का—वहाँ तो जो कह आए हैं ख़ाली हाथ नहीं क़दम रखने का।

एक। और क्या मर्दों के यही मानी—"जाय लाख रहै साख"

दूसरा। (उसे एक चपत जमा कर) अबे ओ साखवाले धन्ना सेठ के नाती, ज़रा अपनी टोपी तो संभाल, फिर लाख की फ़िकिर करना। बचों नामर्दा, अवे जो रण्डी ही के सिर न घहराए और उसी से न पुजाया तो मर्दानगी क्या? यार लोग भी कहीं टका दे कर कुछ काम करते होंगे?

तीसरा। (मोछों पर ताव फेरते फेरते) बहर हाल, यहां से तो ख़ाली हाथों घर चलना मसलहत नहीं।

(एक मुसलमान घबराया हुआ आता है)

आगन्तुक मुसलमान। अबे पहिले दाढ़ी मोछें तो खैरियत से घर पहुंचा तब दूसरी चीज़ों की फ़िक्र करना।

तीसरा। (चेहरेका रंग फ़क़ हो जाता है) ऐं-ऐं क्या कहा? दाढ़ी मूंछ? अरे क्या हुआ? क्यों म्यां क्या ग़नीम आए क्या?

आ० मुसल्मान। पूछता है ग़नीम आए? अबे आए कि आ पहुंचे—दम साइत में हम सभों का वारा न्यारा है।

सब। तोबः तोबः या इलाही तू ही मुईनो मददगार है।

(नेपथ्य में "हिन्दूपति की जय" का कोलाहल।)

तीसरा। अरे यार–उस्तरा कहां गया–अरे जल्दी करो नहीं सब मारे जांयगे।

मीर। हाय! बी इलाहीजान; तुमने पहिले ही कहा था।

ख़ां साहब। (मीर को एक चपत लगा कर) अब तुझे इलाही जान की ही पड़ी है–अरे कलुवा कम्बख़्त मेरी बीबी से निकाह कर लेगा—हाय! मैं क्या करूं?

एक। हाय! बरसात में यह जङ्गली रास्ते कैसे तै होंगे? अरे रास्ते का निशान भी तो मिट गया है–या खुदा क्या इस जंगलिस्तान में कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा?

(नेपथ्य में "एकलिङ्ग जी की जय" और "अल्लाहो अकबर' का कोलाहल और भी निकट आ जाता है और सब गिरते कांपते हुए भागते हैं)

षष्ठ गर्भाङ्क।

(स्थान रणक्षेत्र।)

(कोई सिर कटा, कोई हाथ कटा कोई मरा, कोइ सिसिकता पड़ा है-शवों की ढ़ेर में जीते और मरों का पता भी नहीं लगता, मुमुर्षुओं का आर्तनाद गूंज रहा है–एक सन्यासिनी आकर शवों में किसी को ढूंढ़ रही है)

सन्यासिनी (उदासी और उत्साह के साथ।)

"बताय दे मेरे जोगिया को किन्ने बिलमाया रे-बताय दे मेरे-उनही पर जोग कमाया रे। अंग भभूत गले मृगछाला घर गर अलख जगाया रे।"

गुलाबसिंह। (मुमुर्षु अवस्था में पड़ा हुआ टूटे फूटे स्वर से) हैं-यह असमय अमृत वर्षा कहाँ से ? मन ! अपने को सम्भाल-भला इस भयानक रणभूमिमें प्यारी मालती कहां ?

मालती। (दौड़कर, गुलाबसिंह के मस्तक को अपनी गोद में रख कर) नाथ आप घबड़ांय नहीं, सचमुच मैं ही हूं-

मालती-अब आपका शरीर कैसा है ?

गुलाबसिंह। बहुत अच्छा-जो कसर थी वह भी पूरी हुई-आहा !

जनम भूमि अरु स्वामि हित रण गंगा म न्हाय।
तजत प्रान प्रिय अंक में मो सम कौन लखाय॥

(राणा जी राजवैद्य को साथ में लिवाए हुए घबराए से आते हैं।)

राणा। वैद्यराज ! आज जो आप गुलाबसिंह को बचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूंगा-आहा, आज के युद्ध में गुलाबसिंह की वीरता प्रशंसनीय थी, और मुझे बचाने ही में उसकी यह दशा हुई। गुलाबसिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौर की रक्षा से भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

वैद्य। हुकुम अन्नदाता, मेरे पास वह जड़ी बूटी हैं कि जो तन में प्राण होगा तो बचने में कोई सन्देह नहीं।

राणा। (मालती को देख कर) बेटी मालती ! तू यहां कहां ? धन्य तेरा प्रेम।

गुलाबसिंह। (राणा का पैर छूकर टूटे फूटे स्वर से) स्वामिन !

आपने क्यों कष्ट किया ? आहा मुझ से तुच्छ पर इतनी कृपा ।

वैद्य । (गुलाबसिंह की नाड़ी तथा घावों को देखते हैं ।)

(नेपथ्य में गान)

जियो जुग जुग जग ऐसे वीर ।
जे निज देश, स्वामि हित कारण गिनत न अपनी पीर ॥
धन धन ते रमनी जे पति सों मिलत मनौं पय नीर ।
धन्य स्वामि जिनके सेवक हित निस दिन प्राण अधीर ॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है ।)

सप्तम अंक ।

प्रथम गर्भाङ्क ।

(स्थान—उदयपुर का जंगली मैदान ।)

(बादशाही फ़ौज—मुहब्बत ख़ां और फ़रीद ख़ां ।)

मुहब्बतख़ां । छिः ! तुम लोगों ने क्या बहादुरी का नाम डुबाया उदयपुर दुश्मनों के हाथ छोड़ते तुम्हें शर्म न आई ?

फ़रीदख़ां । हुज़ूर बजा ईर्शाद, मगर मौसिमे बरसात इस मुल्क में हम अजनबियों को क़यामत का सामना है, एक तो कम्बख़्त नहरू का मर्ज़ करीब क़रीब निस्फ़ फ़ौज़ को तंग किए था, दूसरे हम लोग यह समझकर कि अब शिकस्त पर शिकस्त खाकर ये मर्दूद पस्त हो गए होंगे इतमीनान से थे और कहीं इनका नामोंनिशान भी न था, मगर खुदा की पनाह. न जाने किस खोह से ये टिड्डी दल की तरह हम लोगों पर आ गिरे, हालां कि हम लोगों के बहादुरों ने जी छोड़कर मुकाबिला किया, मगर उन बेशुमार जर्रार राजपूतों और भीलों के सामने कहाँ तक ठहर सकते थे, पैर उखड़ गए, जनाबेआली, हम लोग तो खुद ही निहायत नादिम हैं ।

मुहब्बतख़ां । ख़ैर कुछ मुजायकः नहीं, " गुजश्तः रा सलवात आइन्दः रा इहतियात " हालांकि जहांपनाह निहायत ही ग़ज़बनाक थे मगर हम लोगों ने उनके गुस्से को यही वुज़ूहात दिखला कर फ़रो कराया, अब हुकुम दिया है कि अगर इस जंग में सच्ची बहादुरी का सुबूत मिलेगा और उदयपुर फ़तह करके आवेंगे तो सब

गुनाह मुआफ़ फ़र्माए जायंगे और आला मनसब दिए जायंगे, वरनः हमारे रूबरू आने की ज़रूरत नहीं।

फ़रीदख़ां। खुदावन्द, इन्शाअल्ला तआला अब ऐसा ही होगा।

(नेपथ्य में "राणा प्रतापसिंह की जय" का कोलाहल)

मुहब्बतख़ां। (फ़ौज की ओर फिर कर) देखो बहादुरो, दुश्मनों की फौज आ पहुंची, अब तुम्हारे आज़माइश का वक्त है, नमक अदा करने और बिहिश्त हासिल करने का यही वक्त है।

(नेपथ्य से गुलाबसिंह अट्टाट्टहास्य करते हुए)

" और दोज़ख़ में जाने का यही वक्त है "

(मुसलमान सेना " काफिर काफिर " पुकारती हुई बड़े जोश के साथ एक ओर से आती है और दूसरी ओर से राणा की सेना आती है, आगे आगे कविराजा जी।)

कविराजा—

चलो चलो सब बीर चलो घन घोर युद्ध करि।
मेटैं हिय की कसक्क यवन हित आजु पांय दरि॥
देखो देखो मातु कालिका जीभ निकारैं।
यवन रुधिर प्यासी सुलोल जिह्वा चटकारैं॥
वह देखो तुव प्रभू प्रताप निहारत तुव मुख।
है तुम्हरे ही हाथ आत्मगौरव मेवार सुख॥
निज पुरुषन की करौ याद जिन सह्यो सबै दुख।
पै न तज्यो स्वाधीनपनो छोड़यो जग के सुख॥
बढ़ौ बढ़ौ सब बीर आर्य्य ध्वज नभ फहरावै।
चढ़ौ चढ़ौ सब वीर यवन ध्वज धूरि मिलावै॥
लरौ लरौ सब वीर आर्य पौरुष दिखरावैं।
धरौ धरौ सब वीर यवन धरि दास बनावैं॥

तरौ तरौ सब वीर युद्ध गंगा में न्हावैं ।
करौ करौ सब वीर अकर कर कीर्ति बढ़ावैं ॥
अरौ अरौ सब वीर यवन पग आजु डिगावैं ।
परौ परौ सब वीर शत्रु के पीछे धावैं ॥
हरौ हरौ सब वीर देस दुख आजु नसावैं ।
मरौ मरौ सब वीर—

(अचानक नेपथ्य से एक गोली आकर कविराजा को लगती है और गिरते गिरते-)

कविराजा । —स्वर्ग चलि आजु बसावैं ।

(सब आवेश में आकर नेपथ्य में शाही फ़ौज पर टूटते और कुछ लोग कविराजा के मृत शरीर को लेकर नाचते कूदते हैं ।)

क्षत्रियगण । चलो, चलो, " स्वर्ग चलि आजु बसावैं "

(नेपथ्य में "श्री एकलिङ्ग की जय" "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल ।)

(पटाक्षेप ;

द्वितीय गर्भाङ्क ।

(स्थान जङ्गली मार्ग—कई भील सिर पर बड़े बड़े पिटारे लिए घबराए हुए आते हैं ।)

एक भील । चलो, चलो, भाइयो पैर बढ़ाए चलो ।

(एक पिटारे के भीतर से रानी)

अरे दर्बार कहां हैं ? उनकी क्या दसा है ?

दूसरा भील । चुप, चुप, माजी चुप, अभी दुसमन दूर नहीं हैं, अभी सांस न लेना ।

तीसरा भील। मां, दर्बार के लिये कुछ चिन्ता न करना, जब तक एक भी भील बच्चा जीता रहेगा आप लोगों में से किसी का एक बाल भी न खसकने पावेगा।

(नेपथ्य में "धन्य स्वामिभक्ति")

सब भील। अरे कौन आया ? चलो चलो जल्दी भागें।

(सब भागते हैं—वीरवेष से बहुत ज़ख़्मी गुलाबसिंह का प्रवेश।)

गुलाबसिंह। धन्य स्वामिभक्ति धन्य; आहा ये गंवार इस समय प्रभु की कैसी सेवा कर रहे हैं ! धिक्कार है हम लोगों को कि प्रभु के एक काम न आए। न जाने कहां दरबार पड़ गए हैं; बहुत खोजा कहीं पता न लगा, हाय! हे दीनानाथ, प्रतापसिंह की रक्षा करना। इस समय हिन्दू मान गौरव का एक वही आश्रय है, उसे न छीन लेना।

(नेपथ्य से)

छिः ! प्रभु को अकेले छोड़ कर कायरों की तरह बड़ बड़ा रहे हो ? अरे जाओ, जल्दी जाओ, या तो राणा की रक्षा करो या वहीं तुम भी उनका साथ दो।

गुलाबसिंह। (चौंक कर) हैं! इस असमय में यह अमृतवर्षा किसने की ? (नेपथ्य की ओर देख कर) आहा ! प्यारी मालती के विना और किसका इतना उदार हृदय होगा ? धिक्कार है हमको कि दरबार विपत्ति में फँसे हैं और हम प्राण लेकर यहां खड़े हैं।

(जाने के लिये उद्यत होता है और आगे की ओर देख कर प्रसन्नता पूर्वक)

अहाहा ! वह देखो राणा जी तो भील वेष में चले आ

रहे हैं, जान पड़ता है प्रभुभक्त भीलों ने अपने को राणा बना, दर्बार को अपने वेष में बचाया, धन्य भील जाति धन्य-आज तुम्हारा जन्म सुफल हुआ, अब जो तुम्हें नीच कहै, वह आप नीच—चलें हम भी प्रभु की सेवा करें। (गुलाबसिंह जाता है।)

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान घोर जंगल—एक गुफा की चट्टान पर राणा जी सोए हैं और रानी पैर दाब रही है)

रानी। (मन ही मन) हाय! देवतुल्य शरीर इस घोर जङ्गल में इस पत्थर की सेज पर सोने योग्य है? जिसे सैकड़ों ही दास दासी अपनी सेवा से प्रसन्न नहीं कर सकते थे उसे मैं, जिसे कभी सेवकाई सीखने का काम न पड़ा, कैसे प्रसन्न कर सकती हूं? तिस पर इन बालकों के लालन पालन से और भी समय नहीं मिलता कि इनकी कुछ सेवा कर सकूं (राणा की ओर सजल नेत्र से देख कर) नाथ! इस अभागिनी के कारण आप को बहुत दुःख सहने पड़ते हैं—क्षमा करना, हाय! मैं तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर सकती, मैं जब से तुम्हारी सेवा में आई, दुःख ही देती रही, हाय! मैं इसका क्या उत्तर परमेश्वर को दूंगी? जो मैं अभागिन आज मर भी गई होती तो तुम्हारी बहुत चिन्ता कम हो जाती, मेरी ही रक्षा के लिये तुम्हें हैरान रहना पड़ता है (आंसू पोंछती है) (राजकुमारी आकर रानी के गले से लिपट कर) मा, बड़ी भूख लगी है।

रानी। बेटी, अभी थोड़ी ही देर न-हुई है कि तुमने खाया है।
रा० कु०। हूं हूं आधी ही तो रोटी दी थी, उससे पेट तो भरा ही नहीं, फिर बड़ी भूख लगी है।
रानी। अच्छा, हौरा न कर, नहीं दर्बार की नींद खुल जायगी।
रा० कु०। (धीरे से) मा, दर्बार उदयपुर कब चलेंगे?
रानी। (आंखों में आँसू भर कर) जब भाग ले जाय।
रा० कु०। अच्छा खाने को तो दे, अब भूख नहीं सही जाती।
रानी। प्रान मत खा, जा उस पत्थर के नीचे आधी रोटी ढकी है उसे खा न।
रा० कु०। मा, घास की रोटी और कब तक खानी होगी, यह रोटी तो रूखी खाई नहीं जाती। और कुछ नहीं है?
रानी। (आंख डबडबा कर) बेटी, जब जो मिले तब उसे प्रसन्न होकर खाना चाहिए, अन्न को ऐसा नहीं कहना।

(राजकुमारी जाकर ज्योंही पत्थर उठाती है कि बिल्ली झपट कर उस आधी रोटी को भी खींच ले जाती है, राजकुमारी चीख कर रोने लगती है. रानी भी अपने वेग को नहीं रोक सकती फूट कर रो उठती है. राणा चौंक कर खड़े हो जाते हैं।)

राणा। क्या हुआ? क्या हुआ? क्या दुश्मन आए क्या? (राजकुमारी की ओर देख कर) बेटी तू क्या इस तरह रो रही है?
राजकुमारी। (कुछ बोल नहीं सकती, रोती हुई उङ्गली से बिल्ली की ओर दिखाती है)
राणा। क्या तेरी रोटी बिल्ली उठा ले गई?
रा०कु०। (राणा से लिपट कर रोते रोते) ब-ड़ी-भू-ख-ल-गी-है।
राणा। (वेग पूर्वक आंसू रोक कर स्वगत) हाय, वह प्रताप का

हृदय जो कभी बड़े बड़े शत्रु दल में नहीं हिला, आज क्यों कांपा जाता है, जो आँखें बड़ी बड़ी विपत्तियों में फंसने से और बड़े बड़े दुःख पड़ने पर भी तर न हुईं आज उनमें स्वतः आंसू क्यों उमड़े आते हैं? (रानी की ओर देखकर) भद्रे! हमारे हिस्से की रोटी हो तो इसे देकर चुप कराओ, इसके रोने से तो हमारा कलेजा उमड़ा आता है।

(रानी निरुत्तर होती है।)

राणा। तो क्या तुम्हारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इसकी भूख बुझा सको?

(रानी बड़े वेग से रो उठती है।)

राणा। हाय, आज मेवाड़ के राणा की यह दशा हुई कि घास की जड़ की रोटियां भी उसके संतान को प्राप्त नहीं? दीनानाथ! हमने ऐसे कौन से दुष्कर्म किए हैं जो ऐसे दारुण दुःख सहने पड़ते हैं? प्रभु हो! क्या मैं जो इस आर्यभूमि की रक्षा और गौरव बढ़ाने के लिये इतने कष्ट उठा रहा हूं, वे तुम्हें नहीं रुचते? जाना, जाना, तुम्हारा कोप इस देश पर है इसलिये अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने के कारण तुम प्रताप पर रुष्ट हो; पर नाथ! इन अबोध बालकों ने क्या बिगाड़ा है जो तुम्हें इन पर भी दया नहीं आती? (उन्मत्त की भांति घूमता हुआ) अच्छा जाने दो, जाने दो, इस अभागे देश को रसातल में जाने दो, मुझे क्या, मैं भी न बोलूंगा, तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही—(कुछ ठहर कर) सारा देश अकबर के करतल है, सब क्षत्रिय

अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रतापूर्वक बेच रहे हैं, किसी को कुछ इसकी पर्वा ही नहीं है तो प्रताप, तू क्यों व्यर्थ प्रान दिए देता है—अरे अकेले तेरे किए क्या होगा? क्यों व्यर्थ इन कुसुम सुकुमार बालकों को कष्ट दे देकर सताता है? हाय, यह प्रताप का वज्र हृदय हिमालय की उच्चतम शिखर से गिराए जाने की चोट सह सकता है, वह बड़े बड़े गोले, गोली, तीर, कमान को छाती पर रोक सकता है, इस शरीर को टुकड़े टुकड़े कर डालो यदि मुँह से उफ़ भी निकले, जबान खींच लेना, पर हाय, इन सुकुमार अबोध बच्चों के करुणा वचन तो सहे नहीं जाते, हृदय को छेदे डालते हैं—

सहे सबै दुख नेकु न अपुने प्रण तें हटके।
राज गयो, धन गयो, फिरे वन बन में भटके॥
बंधु बांधव कटे आपुने सुतहिं कटायो।
राखि आपुनी टेक सबै तृण सरिस सहायो॥
पै हाय सही अब जात नहिं जीवत इन नैननि निरखि।
इन दूध पीवते बालकनि रोटी हित रोवत बिलखि॥

प्रभु, अपनी सृष्टि को संभालो. आज अनहोनी हो रही है, वज्र हृदय प्रताप का हृदय आज द्रव हुआ जाता है, आज क्या होनहार है? (राजकुमारी रोते रोते सो जाती है) आहा! सचमुच नींद सा सच्ची सहचरी इस संसार में कोई नहीं। देवी! इस समय, तुमने हमारा बड़ा उपकार किया, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं (रानी से) तुम यहीं रहो, मैं देखूं जो कुछ मिल सकै तो लाऊं, नहीं नींद खुलते ही फिर—

(नेपथ्य में)

अरे राणा जी कहां हैं, जल्दी उन्हें खबर दो, शत्रुओं को यहां का भी पता लग गया।

राणा। हाय अब नहीं सही जाती, और तो और इस भूख की मारी छोकरी को कैसे जगावें ?

(घबराया हुआ बाहर जाता है।) (पटाक्षेप)

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान दिल्ली—अकबर का मंत्रणागृह।)

(अकबर हाथ में एक पत्र लिए और पीछे पीछे ख़ानख़ाना का प्रवेश।)

अकबर। क्यों भाई रहीम, क्या फिर कभी वैसी ख़ुशी हासिल होगी जो हमलोगों को बचपन में उस रेगिस्तान और जंगलों के खेल में हासिल होती थी ? वह जेठ वैसाख की धूप और वह तपी हुई रेत, हम लोगों को गोया क्वार कातिक की चांदनी और जमुना किनारे की सर्द और मुलायम बालू जान पड़ती थी।

ख़ानख़ाना। और उस वक़्त के उन खटमिट्ठे जंगली बेर, और चने के साग में जो मज़ा आता था वह इस वक़्त इन इन्तिहा के लज़ीज़ खानों में नसीब नहीं। क्यों याद है, उस रोज़ जो दरख़्त से गिरे थे ?

अकबर। ख़ूब—अरे यार कुछ न पूछो, एक तो चोट लगी, दूसरे ख़ानबाबा बेभाव की लगे जमाने।

ख़ानख़ाना। (कुछ अप्रतिभ होकर) हमारे बाबा का स्वभाव ज़रा गुस्सवर था।

अकबर। हज़रत कुछ यह भी ख़बर है अगर उनकी तालीम न

होती तो आज हमको आपको यह दिन भी न मयस्सर आते—बाबा उस वक्त कैसी मुसीबत में थे, ख़ानबाबा को उधर उनकी दिलजोई करनी, इधर हमलोगों की ख़बरगीरी करनी और साथ ही फिर सलतनत हासिल करने की कोशिश करनी ।

(नेपथ्य में एकाएक बाजे बजने लगते हैं और तोपों की आवाज़ होने लगती है ।)

अकबर । हैं, यह एकबारगी क्या हुआ ?

(एक ख़लीता लिए हुए चोबदार का प्रवेश ।)

चोबदार । (ज़मीन चूमकर) निगाह रूबरू खुदावन्द नेआमत दौलत दराज़, जानोमाल की ख़ैर—अभी एक सांडनी सवार उदयपुर से आया है, यह ख़लीता लाया है और सारे शहर में शादयाना मचाया है ।

(अकबर ख़लीता खोलकर पढ़ता है और मारे आनन्द के उछल पड़ता है ।)

अकबर । (चोबदार को अपने हाथ की एक अंगूठी देकर ।) जाओ, अभी उस क़ासिद को सीमोज़र से मालामाल करो, जशने नौरोज़ की तैयारी हो, शहर में आज रोशनी होने का हुक्म जारी हो ।

(चोबदार ज़मीन चूमकर जाता है)

ख़ानख़ाना । खुदावन्द, इस ख़त के मज़मून को जानने के लिये जी उमड़ा आता है ।

अकबर । (ख़त देते हुए) यह लो, मेरे हिन्द के बादशाह होने की सनद देखो ।

(ख़ानख़ाना पत्र लेकर पढ़ते हैं, पृथ्वीराज आते हुए दिखाई देते हैं ।)

पृथ्वीराज। (आप ही आप) सुना है आज सूर्यनारायण अपना राज्यासन निशिनाथ को देकर बंगाले की खाड़ी में निवास के लिये चले जा रहे हैं। राणा प्रतापसिंह ने मुग़लराज से सन्धि का प्रस्ताव किया है। देखें यह बात कहां तक सही है।

(आगे बढ़कर अकबर को सलाम करता है।)

अकबर। अख्ख़ाह! आइए महाराज, लीजिए आपके राना उदयपुर ने यह सुलह का पैग़ाम दिया है। आपको मुबारक हो। (पत्र पृथ्वीराज को देता है।)

पृथ्वीराज। (पत्र पढ़ कर)

भूखे प्राण तजै भले, केशरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, बिना स्वाति न अघाय।
बिना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति बिना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यों परताप न डिगै, होंय सबही किन रूखे।
अरि सनमुख नहिं नवै, फिरे किन वन वन भूखे॥

अकबर। तो क्या आपको इस ख़त में कुछ शक है।

पृथ्वीराज। खुदावन्द, पूरा शक है, क्योंकि—

वरु दिनकर पच्छिम उगे, ग्रहपति पूर्व अथांय।
सागर मर्यादा तजै, पंकज गगन लखांय॥
पंकज गगन लखांय, केसरी खर बरु खावैं।
नभ नछत्र कर मिलैं, कदली फेरि फरावैं॥
जब लौं तन में प्रान, प्रान में बुद्धि रतिक भर।
तजै न हठ परताप, उपे पच्छिम बरु दिनकर॥

अकबर। तो आपका शक किस तरह रफ़ः हो सकता है।

पृथ्वीराज। जबतक मैं खुद न तसदीक़ कर लूँ।

अकबर । क्या मुज़ायक़ा है, आपका जैसे जी चाहे इतमीनान कर लें ।

(पृथ्वीराज कृतज्ञतापूर्वक सलाम करके एक ओर से जाता है और दूसरी ओर से अकबर ख़ानख़ाना जाते हैं ।)

पञ्चम गर्भाङ्क

(स्थान—अरबली पार्वत्य प्रांत ।)

(राणा प्रतापसिंह अकेले घूम रहे हैं ।)

राणा । हाय, मेरा इतना किया सब नष्ट जाता है, एक काम न आया, जिस निर्दय दैव ने मुझे इस विपत्ति सागर में डाला उसीने न जाने इस समय कैसी मोहिनी माया मेरे हृदय पर डाल रक्खी है जो मेरी बुद्धि में ऐसा विपर्यय हो रहा है–हाय, प्रताप, तू भी अब यवनों का दास बनेगा ! अरे तुझे भी अब दिल्ली में सलामी बजानी पड़ेगी ! देख, तेरे इस कर्म से आज कुल गुरु सूर्यनारायण का मुख भी मलिन हो रहा है— (सूर्यनारायण की ओर देख कर) देव ! रक्षा करो। अपने कुल—(गुलाबसिंह का एक पत्र लिए हुए प्रवेश।)

गुलाबसिंह–(हाथ जोड़ कर) घणी खमा अन्नदाता, दिल्ली से कुँवर पृथ्वीराज जी का यह पत्र लेकर एक दूत आया है।

राणा । (आग्रह पूर्वक) पढ़ो, पढ़ो, हमारे विपत्ति सहचर पृथ्वीराज क्या लिखते हैं ?

(गुलाबसिंह पत्र पढ़ते हैं ।)

स्वस्ति श्री अरवली बली जन आश्रय दायक ।
जहां बसत परंताप शत्रु हिय ताप विधायक ॥

पराधीन दिल्ली बासी नित दास वृत्तिकर।
महा अधम पृथिराज छुअत तुव चरन पुण्यतर॥
अब कुशल कहां इत है रही गई बिदा ह्वै कै कवै।
उत रही कछुक भाजत सोऊ रुख प्रताप मोर्‌यो जवै॥१॥
बूड़े राज समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम॥ २॥
अकबर परम प्रवीन, राजपूत दागिल किए।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप वल कारनै॥ ३॥
दिल्ली रूप बजार, विकीं सबै कुल कामिनी।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बची॥ ४॥
क्षत्र देश निःक्षत्र, भयो होत निहचय कवै॥
जौं न धरत सिर छत्र, परम हठी परतापसिंह॥ ५॥
खोए राज समाज, असन वसन खोए सवै।
खोए सब सुख साज, पै राखी जातीयता॥ ६॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयो।
अकबर काल भुअंग, कुचले फने जिन पग तरैं॥ ७॥
जदपि न राज समाज, फिरत सहत दुख वनहिं बन।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्ति छाई जगत॥ ८॥
सबै अचंभो होय, कौन सहाय प्रताप को।
सांच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम॥ ९॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता।
डिगन दियो नहिं नेक, अभिमानी परताप नै॥ १०॥
सुनत हाय कह आजु, प्रलय होन चाहत कहा।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे॥ ११॥
दिल्ली के दर्बार, झुकिहै सिर मेवार को।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै॥ १२॥

जननी धरित्री हाय, क्यौं न फटत तू तुरत ही।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद वच ॥ १३ ॥
देखु प्रताप विचारि, नासमान संसार यह।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुख हित कीरति तजत ॥१४॥
देखौ सांचे वीर, एक आस गुन तुव गहे।
जीयत धरि जिय धीर, सो आसा जिन तोरिये ॥ १५ ॥
यह दिन द्वै सुख काज, कीरति अक्षय जिन तजहु।
क्षत्रिय लाज जहाज, जवन समुद्र न बोरिये ॥ १६ ॥
जो पवित्रतर मान, रच्छ्यो सहि सहि असह दुख।
सो न दीजिये जान, दिल्ली की बाजार मैं ॥ १७ ॥
सिला सिला टकराय, टूक टूक रोटी विना।
भूखन किन मरिजाय, सँग स्वतंत्रता अतुल धन ॥ १८ ॥
तुव पुरुखे निज छाप, जो रच्छ्यो जन सीस दै।
सो वेचत परताप, क्षणिक सुखहि के कारनै ॥ १९ ॥
नासमान करि आस, अविनासी की आस तजि।
नासमान सुख रास, बुद्धिमान राना चहत ॥ २० ॥
इक दिन अकबर नाहिं, मुगल राज्य हूँ नहिं रहै।
तुव कीरति रहि जाहिं, जब लौं भारत नाम थिर ॥ २१ ॥
ह्वै है वह दिन एक, जब अकबर हूँ नहिं रहै।
रखि हैं कुल की टेक, सब क्षत्रिय तुव सरन गहि ॥ २२ ॥
खोवहु जिन निज धीरता, धोवहु जिन निज लाज।
सोवहु जिनि सुख सेज पैं, जब लौं सरै न काज ॥
जब लौं सरै न काज, न तब लौं थिर ह्वै रहिये।
जो दुख सिर पैं परै, धीर ह्वै सब कुछ सहिये ॥
अहो वीर परताप, हृदय दुर्बलता गोवहु।
उठौ उठौ कटि कसौ, क्लीवता जड़ सौं खोवहु ॥ २३ ॥

और अधिक हम कह लिखैं, तुम हौ परम सुजान ।
मान राखिये आपुनो, हँसै न जासों मान * ॥ २४ ॥

* खेद का विषय है कि पृथ्वीराज के पत्र की मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी । उदयपुर से भी नैराश्य पूर्ण उत्तर मिला । बाबू गोकर्ण-सिंह जी बांकीपुर निवासी द्वारा केवल ये आठ सोरठे और दोहे मिले—

सोरठा ।

अकबर घोर अघार, ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागे जगदातार, पोहेरे राण प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबरिये इण वार, दागिल की सारी दुणी ।
अण दागिल असवार, चेटक राण प्रताप सी ॥ २ ॥
अकबर समद अथाह, सूरायण भरियो सुजल ।
मेवाड़ो तिण माह, पयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥
आई हो अकबरियाह, तेज तिहारी तुरकड़ा ।
नमि नमि नौसरियाह, राण बिना सहराजवी ॥ ४ ॥
चौथी चेतौडाह, बांटी बाजंती तणूं ।
दांसै मेवाड़ाह, तो सिर राण प्रताप सी ॥ ५ ॥

दोहा ।

जननी सुत अहड़ा जणे, जहड़ो राण प्रताप !
अकबर सूतोहि ओध के, जाण सिराने साप ॥

सोरठा ।

पातल पाघ प्रमाण, सांची सांगा हरतणी ।
रही अभोगत राण, अकबर सूंव भी अणी ॥ ७ ॥
सोव मह संसार, असुर पलोल ऊपरै ।
जागै तू निणवार, पोहेरे राण प्रताप सी ॥ ८ ॥

प्रतापसिंह–(क्रोध पूर्वक, मोछों हाथ फेरता हुआ) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छि !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग मांही।
को पहिरे दासत्वश्रृंखला निज पग मांही॥
इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ॥ *"

सुनो सुनो—

जब लौं तन मैं प्राण न तब लौं मुख को मोड़ौं।
जब लौं कर मैं शक्ति न तब लौं शस्त्रहि छोडौं॥
जब लौं जिह्वा सरस दीन बच नहिं उच्चारौं।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को क्षत्रिय नाम न बोरिहौं।
जब लौं न आर्यध्वज नभ उड़ै तब लौं टेक न छोरिहौं॥

(नेपथ्य में)

जब लौं जग परताप, क्षत्रियत्व तब लौं अभय।
कौन करत परिताप, परि संसय निर्मूल मैं ?

प्रतापसिंह। आहा ! गुरुदेव अच्छे समय आए। चलें उनसे परामर्श करके पृथ्वीराज को उत्तर लिख दें।

(प्रस्थान।)

षष्ठ गर्भाङ्क।

(स्थान–मेवाड़ का सीमाप्रांत।)

(आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग।)

राणा। मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगों

---

* "हिन्दी बंगवासी" १२ अप्रैल सन् १८९७ से उद्धृत।

ने बड़े दुःख उठाए और अंत में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्यहीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ना पड़ता है। आहा सच है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

एक सर्दार। अन्नदाता! यह आपके कहने की बात है? क्या आप अपने लिये यह कष्ट उठा रहे हैं? जिस जन्मभूमि की रक्षा में आप इतने दुःख सह रहे हैं वह क्या हमारी नहीं है? उसकी रक्षा क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है?

राणा। पर भाई इस अधम प्रताप के किए जन्मभूमि की रक्षा भी तो नहीं हुई? अब तो जन्मभूमि को भी शत्रुओं के हाथ में छोड़कर अज्ञातवास करने चले हैं?

सर्दार। क्या हुआ पृथ्वीनाथ, कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रतापसिंह ने सुख की चाह में अपनी जननी जन्मभूमि को यवनों के हाथ बेचा? परमेश्वर की लीला कौन जानता है, क्या आश्चर्य है कि फिर ऐसा समय आवै जब श्री हुजूर अपने देश को शत्रुओं से लौटा सकें, धर्मावतार, उस समय कलङ्कित पैर से तो इस राज सिंहासन पर न चढ़ेंगे।

राणा। इसमें तो सन्देह नहीं, और फिर अपनी आंखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश में मरना ही अच्छा। क्योंकि—

"मरनो भलो विदेश को जहां न अपुनो कोय।
माटी खायँ जनावरां महा महोच्छव होय॥"

एक सर्दार। ठीक है—

"दुरदिन पड़े रहीम कहि दुरथलें जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागत आग॥"

राणा । सच है, अच्छा चलो भाइयो ! चलो, अब इस स्थान की मोह माया छोड़ो (आंखों में आंसू भर कर)—

"जेहि रच्छी इक्ष्वाकु लो अब लौं रविकुल राज।"
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज ॥
तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारा जोही ।
हे मिवार सुखसार कृपा करि छमियो मोही ॥
रह्यो सदा करि भार काज आयो तुम्हरे केहि ।
बिदा दीजिये हमैं भार हलकाय आशु जेहि ॥ १ ॥

(सब लोग सजलनेत्र से वेर वेर पीछे की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हाथ उठा कर इन लोगों को रोकते हुए भामाशा दिखाई पड़ते हैं।)

भामाशा । (पुकार कर) ओ मेवार के मुकुट ! ओ हिन्दू नाम के आश्रयदाता ! तनिक ठहरो, इस दास की एक बिनती सुनते जाओ । भामाशा को अकेले छोड़ कर मत जाओ।

राणा । (घोड़ा रोक कर) भामाशा ऐसे घबराए हुए क्यों आ रहे हैं ?

(भामाशा पास आ जाते हैं और घोड़े से कूद कर राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं, राणा घोड़े से उतर कर भामाशा को उठा छाती से लगाते हैं, दोनों खूब रोते हैं ।)

राणा । मंत्रिवर, तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो ?

भामाशा । प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण आप पूछते हैं ?

धिक सेवक जो स्वामि काज तजि जीवन धारै ।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहिं विचारै ॥
धिक सरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै वंचै ।
धिक धन जो तजि स्वामि काज स्वारथ हित संचै ॥

धिक देशशत्रु किरतघन यह भामा जीवत नहिं लजत।
जेहि अछत वीर परताप वर असहायक देशहिं तजत॥१॥

राणा। परंतु इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रक्खी?

भामाशा। अन्नदाता, यह आप क्या कहते हैं? परमस्वार्थी भामाशा ने आपके लिये क्या किया? अरे आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करै और आप वन वन की लकड़ी चुनैं और पहाड़ पहाड़ टकरांय! प्रतापसिंह स्वाधीनतारक्षार्थ, हिन्दू नाम अकलङ्कित करणार्थ देशत्यागी हों और भामाशा अपने जन्मभूमिनिवास का स्वर्गोपम सुख भोगै! जिस राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे पैसे को मुहताज हों, सहायताहीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हों, प्राणोपम जन्मभूमि को छोड़ मरु भूमि की शरण लें. और भामाशा धनी मानी बनकर, ऐसे उपकारी स्वामी की सेवा छोड़ कर विदेशीय, विजातीय, हिन्दूनाम को कलङ्कित करनेवाले राजा की प्रजा बन कर सुखपूर्वक कालयापन करे! धिक्कार है ऐसे धन पर! धिक्कार है ऐसे सुख पर!! धिक्कार है ऐसे जीवन पर!!!

राणा। पर भामाशा, तुम इसको क्या करोगे, जो भाग्य में होता है वही होता है; अब तुम क्या चाहते हो?

भामाशा। धर्मावतार, आज मेरी एक बिनती स्वीकार हो, यही मेरी अन्तिम बिनती है।

राणा। क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है?

भामाशा। तो अन्नदाता एक वेर फिर मेवार की ओर घोड़े

की बाग मोड़ी जाय। इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपए की सम्पत्ति दर्बार की दी हुई है उसी से फिर एक वेर सेना एकत्रित की जाय और एक वेर फिर मेवार की रक्षा का उद्योग किया जाय। जो इसमें कृतकार्य हुए तो तो ठीक ही है और नहीं तो फिर जहां स्वामी वहीं सेवक, जहां राजा वहीं प्रजा।

(राणा सरदारों की ओर देखते हैं)

भामाशा। आप इधर उधर क्या देखते हैं, अरे यह धन क्या मेरे या मेरे बाप का है, यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है। मैं तो अगोरदार था अब तक अगोर दिया, अब धनी जाने और उसका धन जाने।

कविराज। धन्य मंत्रिवर, धन्य! यह तुम्हारा ही काम था-

जेहि धन हित संसार वन्यो बौरो सो डोलै
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपुने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय में उपजावै।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज सों अनुज छुड़ावै॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृण समान तुम तजत हौ!
धन स्वामि भक्त मंत्री प्रवर ताहूँ पैं तुम लजत हौ॥

(बहुत से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश।)

सब। महाराज, हम लोगों को छोड़ कर आप कहां जा रहे हैं? चलिए, एक वेर और लौट चलिये, जब हम सब कट मरैं तब आपका जिधर जी चाहे पधारैं।

राणा। जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या?

चलो चलो सब वीर आजु मेवार उबारैं।
अहो आज या पुण्य भूमि तें शत्रु निकारैं॥

चिर स्वतंत्र यह भूमि यवन करसों उद्धारैं।
हिन्दू नामहिं थापि धर्म अरिगनहिं पछारैं॥
नभ भेदि आजु मेवार पै उड़ै सिसोदिय कुल ध्वजा।
जा सीतल छाया के तरैं रहै सदा सुख सों प्रजा ॥१॥

(चारों ओर से "महाराणा की जय" "हिन्दूपति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमंग पूर्वक कूदते उछलते हैं)

(पटाक्षेप।)

सप्तम गर्भाङ्क।

(स्थान दिल्ली–शाही महल।)

(अकबर और ख़ानख़ाना।)

अकबर। उदयपुर से तो निहायत ही मनहूस ख़बर आई है, राणा के वफ़ादार वज़ीर ने अपनी पुश्तहा पुश्त की कमाई दौलत बेदरोग़ राणा को दे दी है। सुना है उसके पास इतनी दौलत है जिससे वह पचीस हज़ार फ़ौज की बारह बरस तक परवरिश कर सकता है। शाबाश है उसकी दर्यादिली और वफ़ादारी को, आफ़रीं है उसके हुब्बेवतनी और बेदारमग़ज़ी को। क्या दुनियां में ऐसे भी लोग हैं?

ख़ानख़ाना। और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फ़ौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।

अकबर। वाह रे प्रतापसिंह, मैंने भी बहुत सी तवारीखें देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली, शाबाश गज़ब का बहादुर और ग़ज़ब का जफ़ाकश है।

ख़ानख़ाना। मगर खुदावन्द, अब तो मेरी यही इल्तिजा है कि ऐसे शख़्स को अब ज़ियादा तकलीफ़ न दी जाय। हुजूर ऐसे वहादुर शख़्स को सताना नाज़ेबा है।

अकबर। दिल तो हमारा भी यही चाहता है कि अब प्रताप-सिंह को बाक़ी ज़िन्दगी आराम से काटने दें। राजा पृथ्वीराज आते हैं, देखें इनके पास राणा का जवाब क्या आया है।

(पृथ्वीराज का प्रवेश।)

अकबर। आइए राजा साहब तशरीफ़ रखिए, कहिए उदयपुर से कुछ जवाब आया ?

पृथ्वीराज। हां जहांपनाह, राणा जी लिखते हैं "मैंने कभी संधि की प्रार्थना नहीं की, मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वयं युद्ध स्थल में आवें, एक हाथ में उनके तलवार हो और एक में हमारे; तब हमारा जी भर जाय, वह क्या वहाँ से बैठे बैठे लड़कों को तथा अपने साले ससुरों को भेजते हैं, हम क्या इन पर शस्त्र चलावें।

अकबर। ठीक है, बहादुर प्रतापसिंह जो कुछ कहें सब बजा है, ये कलमें उसी को ज़ेबा हैं।

ख़ानख़ाना। अब तो जहांपनाह मेरी इल्तिजा कुबूल हो और प्रतापसिंह पर बख़्शिश की निगाह मबज़ूल हो।

अकबर। नवाब साहब, अगर आप लोगों की यही राय है तो मुझे कोई उज़्र नहीं है, शहबाज़ख़ां को लिख भेजिए वापस चले आंय।

पृथ्वीराज। (स्वगत) धन्य गुणग्राहकता, यह अकबर ही के हृदय का काम है।

(एक चोबदार का प्रवेश।)

चोबदार। (ज़मीन छू कर सलाम करके) जहांपनाह, उदयपुर से एक सिपाही आया है।

अकबर। फ़ौरन हाज़िर लाओ।

(घबराया हुआ एक मुसलमान सैनिक का प्रवेश।)

सैनिक। (ज़मीन छू कर सलाम करके) खुदावन्द, बड़ा ग़ज़ब हुआ, राना ने उदयपुर फिर दख़ल कर लिया।

अकबर। सब सरगुज़श्त जल्द बयान कर जाओ।

सैनिक। आलीजाह, परताप मुतवातिर शिकस्त खाते खाते शिकस्तः दिल हो कर अरबली की सरहद छोड़ कर भागने की फ़िक्र में हुआ। हम लोगों को इतमीनान हुआ कि अब मेवार बे ख़रख़शः हो गया, मगर इतने ही में उसके वज़ीर ने उसे बहुत सी दौलत की मदद दी और वह एकाएक बड़ी फ़ौज इकट्ठी कर हम लोगों पर टूट पड़ा, सिपहसालार शहबाज़ख़ां की फ़ौज को टुकड़े टुकड़े काट डाला, अब्दुल्लाख़ां और उसकी फ़ौज बिल्कुल मारी गई। ग़रीबपरवर हम लोगों पर मुतवातिर ३२ हमले किए गए। क़रीब क़रीब तमाम मेवार इस वक्त दुश्मनों के कब्ज़े में है। सुना गया है कि अम्बर तक राना चढ़ गया था और मालपुरा की बाज़ार लूट ले गया। मैं किसी तरह जान बचा कर हुज़ूर को ख़बर देने आया और लोगों की मालूम नहीं क्या हालत है।

अकबर। (क्रोध पूर्वक ख़ानख़ाना से) कहिए अब आप क्या फ़र्माते हैं ?

ख़ानख़ाना। खुदावन्द प्रताप के लिए तो यह कोई नई बात नहीं है, मगर हुज़ूर का हुक्म जो एक मर्तबः ज़ुबान

मुबारक से निकल चुका क्योंकर पलट सकता है?

अकबर। मगर इसमें सख़्त बदनामी होगी।

पृथ्वीराज। जगतविजयी अकबर के उद्दंड प्रताप को कौन नहीं जानता? प्रताप के मुकाबिले अकबर को कौन बदनामी दे सकता है?

ख़ानख़ाना। और फिर मेरी अक़्ल नाक़िस में तो प्रताप ऐसे बहादुर से दरगुजर करना ऐन फ़ख़्र का बाइस है बल्कि उसे सताना ही बदनामी है।

(नेपथ्य से "अज़ान" का शब्द सुनाई दिया।)

अकबर। नमाज़ का वक्त हो गया, इस वक्त यह ग़ूरः मुलतवी रहै, फिर ग़ौर किया जायगा।

(सभों का प्रस्थान)

अष्टम गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर—राज्य दर्बार—परम सुसज्जित तथा आलोकमय, राज्यसिंहासन पर महाराणाप्रतापसिंह विराजमान, दोनों ओर गुलाबसिंह, भामाशा, कविराजा आदि तथा राजपूत और भील सरदारगण श्रेणीवद्ध खड़े हैं।)

(नर्तकीगण नाचती और गाती हैं।)

गाओ गाओ आनन्द बधाइयां।
हिन्दुपति छत्रिय कुल गौरव राणा सुख सरसाइयां॥
राखी लाज आज भारत की अपुनी टेक निबाहियां।
जुग जुग जीए मेरे साइं तन मन धन सब वारियां॥

राणा। मेरे प्यारे भाइयो! आज श्री एकलिङ्ग जी की कृपा और तुम लोगों के उद्योग से यह दिन देखने में आया कि इस पवित्र स्थान से हिन्दू द्वेषी यवनों का पौरा गया और फिर आज हम लोगों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि का दर्शन पाया। जिस स्वाधीनता रक्षार्थ हम लोगों के अगणित पूर्व पुरुषों ने अकुंठित हो संग्रामस्थल में परम प्रिय जीवन विसर्जन किया था, आज जगदीश्वर की कृपा से वह हमें प्राप्त हुई, इससे बढ़कर भी कोई आनन्द की बात हो सकती है? प्यारे भाइयो, बस हमारा यही उपदेश है कि संसार में जीना तो अपने गौरव सहित जीना, नहीं मरना तो हई है। आहा! महाबाहु अर्जुन का कैसा आदरणीय और अनुकरणीय सिद्धांत था।

"आयुः रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥"

कविराजा। ठीक है पृथ्वीनाथ, आप जो आज्ञा कर रहे हैं उसे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप कर भी दिखाया। आहा!

जो न प्रगट होते प्रताप भारत हितकारी।
को करि सकत कलङ्करहित हिन्दू व्रतधारी॥
अकबर से उद्दंड शत्रु दरि निज प्रण राखी।
को हिन्दू गौरव को सब जग करतो साखी॥
या प्रबल म्लेच्छ इतिहास मैं हिन्दू नाम बिलावतो।
को हे प्रताप बिनु तुव कृपा यह अपवाद मिटावतो॥

राणा। कविराजा जी, आप मुझे व्यर्थ की बड़ाई देते हैं, मैं तो निमित्त मात्र था। जो ये सब राजपूत और भील सरदार गण सहायता न करते तो मैं अकेला क्या कर

सकता था, आहा! झाला महाराज मानसिंह ने तृण-वत् अपना शरीर दे दिया और मुझे बचाया, महाराज खंडेराव, राजा रामसिंह ऐसे वीर पुरुषों ने मेरे लिये क्या क्या न किया। हाय! मैं अब इनके लिये क्या कर सकता हूं? बड़े कविराजा जी ने अपने देश की जैसी सेवा की और जिस भांति प्राण दिया कौन नहीं जानता? जब तक पृथ्वी रहेगी इन लोगों का यश स्वर्णाक्षरों में मेवार के इतिहास में अंकित रहेगा। प्यारे चेतक ने पशु होकर मेरा जैसा उपकार किया उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मंत्रिवर, जहां चेतक का शरीर गिरा है एक उत्तम समाधि बनवाई जाय और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ वहां मेला लगा कर मैं स्वयं वहाँ चला करूंगा। (कविराजा से) कविराजा जी, आप एक पर्वाना लिखिए कि जब तक मेरे और भामाशा के वंश में कोई रहै, मंत्री का पद उसी को दिया जाय और मैं इन्हें प्रथम श्रेणी के सरदारों में स्थान देकर झाटकपट ताज़ीम, पैर में सोने का लङ्गर, पाग पर मांझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बख़शता हूं, जो इनकी सेवा के आगे सर्वथा तुच्छ है। (गुलाब सिंह के प्रति) वत्स गुलाबसिंह, तुमने अपने प्रण को जैसी दृढ़ता से निबाहा सबको उससे शिक्षा लेनी चाहिये। आहा! तुम्हारा और मालती का प्रेम आदर्श स्वरूप है, तुम दोनों ने अपने अपने प्रण को दृढ़ता पूर्वक निबाहा, इसलिये अब विलम्ब का प्रयोजन नहीं। मंत्री, मेरी ओर से मालती के विवाह की तयारी की जाय। दायजे में जागीर आदि का सब प्रबन्ध मैं

स्वयं करूंगा। आप एक शुभ मुहूर्त दिखलावें और अब इस शुभ संयोग में विलम्ब न करें, मैं स्वयं इन दोनों का विवाह अपने हाथ से करूंगा।

(गुलाबसिंह राणा के पैरों पर गिरता है और राणा उठा कर उसे हृदय से लगाते हैं।)

(राजकुमार के प्रति) देखो कुंवर जी, अपने धर्म और देशरक्षार्थ मैंने जो जो कष्ट सहे हैं तुमने अपनी आंखों से देखा है, देखो ऐसा न हो कि तुम हमारे पीछे विलास-प्रियता में पड़ अपने पिता का नाम डुबाओ, प्रताप की कीर्ति पर धब्बा लगाओ, और मरने पर मेरी आत्मा को सताओ। मेरे इन वाक्यों को सदा स्मरण रखना—

जबलौं जग में मान तबहिं लौं प्रान धारिये।
जबलौं तन में प्रान न तबलौं धर्म छाड़िये॥
जबलौं राखै धर्म तबहिं लौं कीरति पावै।
जबलौं कीरति लहै जन्म स्वारथ कहवावै॥
हे वत्स सदा निज वंश की मरजादा निरवाहियो।
या तुच्छ जगत सुख कारनै जिनि कुल नाम हँसाइयो॥

(सरदारों के प्रति)

मेवाड़ की शोभा, मेरे प्यारे भाइयो,—
यह बालक अज्ञान, सौंपत तुम को आजु हम।
जब लौं तन में प्रान, मान जान जिनि दीजियो॥

(सब सरदारगण सिर झुका हाथ जोड़ सजल नेत्र पृथ्वी की ओर देखते हैं।)

(नर्तकीगण गाती हैं ।)

यह दिन सब दिन अचल रहै।
सदा मिवार स्वतन्त्र विराजै निज गौरवहिं गहै ॥
घर घर प्रेम एकता राजै, कलह कलेस बहै ।
बल, पौरुष, उत्साह, सदृढ़ता, आरजबंस चहै ॥
वीर प्रसविनी वीर भूमि यह वीरहिं प्रसव करै।
इनके वीर क्रोध मैं परि अरि कायर कूर जरै॥
राजा निज मरजाद न टारै, प्रजा न भक्ति तजै।
परम पवित्र सुखद यह शासन सब दिन यहां सजै ॥
जबलौं अचल सुमेरु विराजत जबलौं सिन्धु गँभीर ।
तबलौं हे प्रताप तुव कीरति गावैं सब जग वीर ॥
हे करुणामय दीनबन्धु हरि नित तुव कृपा बसै ।
यह आरत भारत दुख तजि कै परम सुखहि बिलसै ॥१॥

(परम प्रकाश के साथ धीरे धीरे पटाक्षेप ।)

॥ श्रीशुभम् ॥

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

इस पुस्तकमाला की निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अवश्य मंगवा कर लाभ उठाइए और स्थायी ग्राहक शीघ्र बनिए—

(१) आदर्शजीवन (चरित्र सुधार पर) (२) आत्मोद्धार (३) गुरु गोविन्दसिंह (४–६) आदर्श हिन्दू भाग १,२ और ३ (७) राणा जंगबहादुर (८) भीष्म पितामह (९) जीवन के आनंद (१०) भौतिक विज्ञान (११) लाल चीन (एक ऐतिहासिक उपन्यास) (१२) कबीर बचनावली (१३) महादेव गोविन्द रानडे (१४) बुद्धदेव (१५) मितव्यय (१६) सिखों का उत्थान और पतन (१७) वीरमणि (१८) नेपोलियन बोनापार्ट (१९) शासनपद्धति (२०–२१) हिन्दुस्तान भाग १–२ (२२) महर्षि सुकरात (२३) ज्योतिर्विनोद (२४) आत्मशिक्षण (२५) सुंदरसार और (२६) जर्मनी का विकास भाग १ ।

मूल्य प्रत्येक पुस्तक का १) रु० है। समस्त ग्रंथमाला के स्थायी ग्राहकों से ॥।) लिया जाता है।

हिन्दी शब्दसागर ।

इतना बड़ा सर्वाङ्गपूर्ण शब्दकोश अभी तक किसी देशी भाषा में नहीं निकला है। इसके १६ भाग निकल चुके हैं।

मूल्य प्रति भाग १) रु०

पृथ्वीराज रासो ।

अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के कवि और सामन्त महाकवि चन्द बर्दाई कृत हिन्दी का आदि और अद्वितीय काव्य २२ खंडों में। मूल्य २०) रु०

मंत्री—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ।